नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 11
दिसम्बर 2002 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

मोदी की ताजपोशी के बाद

(सम्पादक)

संघ परिवार के 'गुजरात प्रयोग' को 'जनादेश' मिल गया है। हिन्दुत्व के नये 'नायक' नरेन्द्र मोदी ने मुसलमानों के खून से तिलक लगाकर फिर से 'राजगद्दी' सम्भाल ली है। हिन्दुत्व के अंगिया बैतालों ने गुजरात प्रयोग को देशभर में फैलाने की घोषणाएं कर दी हैं। प्रवीण तोगड़िया ने तो यहां तक घोषणा कर दी है कि अगले दो साल में भारत हिन्दू राष्ट्र बन जायेगा।

प्रवीण तोगड़िया की घोषणा को खुशी से पगलाए फासिस्ट की मूर्खतापूर्ण कल्पना कहकर भले नजरअन्दाज कर दिया जाये लेकिन नरेन्द्र मोदी की दुबारा ताजपोशी के बाद अब संघ परिवार की रणनीति के साफ संकेत मिल चुके हैं। हिन्दुत्व की रक्षा के नाम पर गुजरात की तर्ज पर पूरे देश में फासिस्ट खूनी अभियान जोर पकड़ेगा। अगले साल दस विधानसभाओं और वर्ष 2004 में लोकसभा चुनाव सिर पर हैं। ऐसे में गुजरात प्रयोग की सफलता को देशव्यापी रूप देने के लिए अब समूचा संघ परिवार एकजुट हो चुका है।

गुजरात के चुनाव नतीजे आने के बाद वाजपेयी ने भी एक बार फिर अपना उदारवादी मुखौटा उतारकर अपना असली फासिस्ट मुखड़ा दिखा दिया है। नरेन्द्र मोदी के भव्य 'राजतिलक' समारोह में उपस्थित होकर उन्होंने मोदी की लाइन पर 'सर्वानुमति' की मुहर लगा दी है।

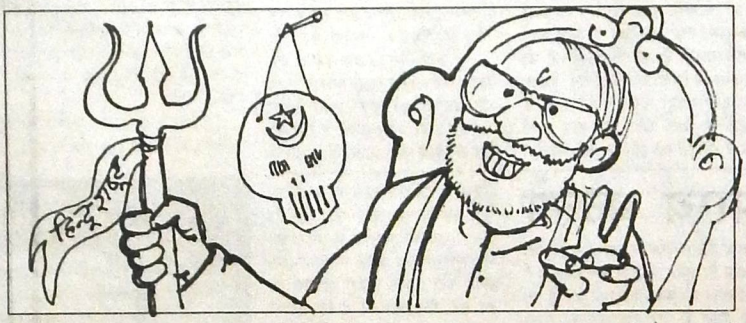

धर्मनिरपेक्षता का आत्ममन्थन

संघ परिवार के गुजरात प्रयोग की सफलता से कांग्रेस की पूंछ पकड़कर साम्प्रदायिक फासीवाद का मुकाबला करने की धर्मनिरपेक्ष ताकतों की लाइन का दिवाला इस कदर पिटा है कि इनके सामने मातम मनाने के अलावा अब कुछ नहीं बचा है।

चाहे सी.पी.आई.-सी.पी.आई. (एम.) हो या समाजवादी पार्टी या दूसरी कोई भाजपा विरोधी पार्टी, इन सबके 'आत्ममन्थन' का निचोड़ एक ही है- कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता के सवाल को दरकिनार कर हिन्दू उदारवाद की लाइन पर साम्प्रदायिक फासीवादी आक्रामकता का मुकाबला करने की रणनीति अपनायी, इसलिए उसकी हार हुई। उधर सोनिया की रहनुमाई में कांग्रेसी 'आत्ममन्थन' का निचोड़ फकत इतना निकला कि गुजरात की हिन्दूवादी लहर का कांग्रेसियों को गुमान नहीं था।

कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता की फिर पोल खुली

ये सारे 'आत्ममन्थन' चुनावी अखाड़े में चित्त पहलवानों की खिसियाहटें हैं। जहां तक साम्प्रदायिक फासीवाद के राक्षस से निपटने का सवाल है, इससे कुछ नहीं हासिल होने वाला। कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता के भरोसे मोदी ब्रिगेड का मुकाबला करने के बारे में सोचना युद्ध से पहले ही आत्मसमर्पण करना है। कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता का सूत्र वाक्य सर्वधर्म समभाव है। भारत जैसे हिन्दू बहुल देश में इस सर्वधर्म समभाव का मतलब ही है बहुसंख्यकों के धर्म की मातहती। सर्वधर्म समभाव की नीति पर अमल का मतलब अगर यह है कि राज्य का सभी धर्मों के प्रति बराबरी का भाव यानी सबको अपने-अपने धर्मों के प्रचार-प्रसार की खुली छूट, सरकारी प्रचार माध्यमों, शिक्षा तंत्र के जरिये सभी धर्मों की शिक्षाओं का प्रचार, तो इसका नतीजा वही होना है जो आज पूरे देश में सामने आ चुका है। हिन्दुत्व के रणबांकुरों का खूनी ताण्डव! बहुसंख्या में होने से हिन्दुत्ववादी ताकतों को जो भौतिक- सामाजिक-सांस्कृतिक ऐतिहासिक लाभ मिल सकता था, वह मिल रहा है। सर्वधर्मसमभाव को यहीं तक पहुंचना था।

जहां तक अमल की बात है तो कांग्रेसी राजनीति का इतिहास यह बताता है कि घोषित धर्मनिरपेक्षता की नीति पर वह कभी भी ईमानदारी से अमल नहीं करती रही है। बात सिर्फ गुजरात चुनाव की नहीं है, जहां कांग्रेस ने पुराने संघी कादर शंकर सिंह बघेला को मोदी के खिलाफ चुनावी युद्ध की कमान सौंपी थी। भाजपा के उग्र हिन्दुत्व के मुकाबले नरम हिन्दुत्व की लाइन पर कांग्रेस ने गुजरात चुनाव लड़ा। पहले भी चुनावी राजनीति के नफा-नुकसान के तराजू पर ही कांग्रेसी सर्वधर्म समभाव अमल में लाया जाता रहा है।

सिर्फ कुछ उदाहरण ही काफी हैं। पंजाब में अकाली प्रभाव से निपटने के लिए सन्त भिण्डरावाले को खड़ा करना, अयोध्या में राम मन्दिर के शिलान्यास में राजीव गांधी की भूमिका, बाबरी मस्जिद गिराने की घटना में नरसिंहराव की भूमिका ये सब चुनावी लाभ के लिए कांग्रेस द्वारा हल्की केसरिया लाइन अख्तियार करने के सिर्फ कुछ उदाहरण हैं। इसी लाइनपर चलते हुए गुजरात में मोदी की गौरव यात्रा के मुकाबले बघेला भाटो जी महाराज की शरण में गये और चुनाव प्रचार के दौरान स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज, सतपाल जी महाराज से लेकर अनेक उदारवादी हिन्दू सन्तों को लाइन लगवा दी।

सामाजिक जनवादियों की कायरता

कांग्रेस हल्की केसरिया लाइन पर ही गुजरात चुनाव लड़ेगी, यह बात चुनाव से काफी पहले ही साफ हो चुका था। जब सोनिया गांधी सिर पर पल्लू डाले गणेशजी की पूजा करते हुए फोटू खिंचवा रही थीं और बघेला भाटी जी महाराज को सीस नवा रहे थे तभी यह बिल्कुल साफ हो चुका था। इसके बावजूद अगर हमारे संसदमार्गी कम्युनिस्ट कांग्रेसी धोती की खूंट पकड़े रहे तो इससे समझा जा सकता है कि

(पेज 10 पर जारी)

साम्राज्यवाद की बढ़ती संकटग्रस्तता इसका विनाश अवश्यंभावी है!

मुकुल

अमेरिकी अर्थव्यवस्था पिछले 25 वर्षों से आर्थिक ठहराव की शिकार है। इससे उबरने का लक्षण दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा है। सोवियत संघ के विघटन व पूर्वी यूरोप के तथाकथित समाजवादी खेमे के बिखराव से मिले नये बाजार व इराक से लेकर अफगानिस्तान तक भयानक युद्ध विभीषिकाओं ने अमेरिका सहित तमाम साम्राज्यवादी मुल्कों को क्षणिक राहत भले ही दे दी हो लेकिन आर्थिक गतिरोध और महामंदी कायम है। अब उदारीकरण का ब्रह्मास्त्र भी काम नहीं आ रहा है। संचार क्रांति (इन्फारमेशन टेक्नोलाजी, आई टी) का बैलून भी अब पिचकने लगा है। पूंजीवाद का ढांचागत संकट अब अन्तकालिक रोग बन चुका है।

सबसे पहले अमेरिकी अर्थव्यवस्था के औसत वार्षिक वृद्धि दर की गिरावट पर नजर दौड़ाते हैं। 1970 के दशक में यह 4.4 प्रतिशत से गिरकर 1980 के दशक में 3.2 प्रतिशत, 90 के दशक में 2.8 प्रतिशत और 1990 से 1995 में 1.8 प्रतिशत पर आ गयी- यानी 70 के दशक से अंतिम दशक के प्रथम छह वर्षों में लगभग 60 प्रतिशत की गिरावट रही जो अब तक लगातार जारी है। गिरावट का यही सिलसिला सभी उन्नत पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में जारी है।

अपने इसी संकट से उबरने के लिए वैश्विक पूंजी जो समाधान प्रस्तुत कर रही है उसी को 'उदारीकरण' का नाम दिया गया है। जिसके तहत वैश्विक अर्थव्यवस्था का पुनर्विन्यास किया जा रहा है, पूरी दुनिया में -विशेष रूप से तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों पर मजदूरी घटाने व सभी 'कल्याणकारी' कार्यक्रमों के खर्चे में कटौती करने के नुस्खे आजमाये जा रहे हैं, व्यापार की स्वतंत्रता और निजीकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है, 'हायर एण्ड फायर' के श्रमिक विरोधी श्रम कानून बनाये जा रहे हैं और पूरी दुनिया के पैमाने पर पूंजी की गतिशीलता में आ रही 'अड़चनों' को हटाया जा रहा है। वैसे भी साम्राज्यवादी 'थिंक टैंकों' ने इस 'विकास' को 'रोजगार विहीन विकास' का नाम दिया है।

वैश्विक लूट के इस खेल में बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को लगातार निगलती जा रही हैं। पूंजी का

(पेज 7 पर जारी)

अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी, यह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए, हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए जो अपनी विशेषताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायने में भिन्न होंगे।

• माओ त्से - तुङ.

आपस की बात

मालिकों के शिकंजे में फंसे मज़दूर

पिछले दिनों बाजार में खरीददारी करते हुए आपके 'बिगुल' अखबार से मेरा परिचय हुआ। इस अखबार का प्रचार-प्रसार करते हुए, जो कुछ भी साथी लोग कह रहे थे उसे सुनकर लगा कि जैसे वे कहीं न कहीं मेरे भीतर भी अकुलाहट और आक्रोश को ही जुबान दे रहे हो। साथियों से बातचीत में 'बिगुल' अखबार के उद्देश्यों के बारे में जाना-समझा और साथ ही इस बात का मुझे एहसास हुआ कि जो दुःख-तकलीफ मैं सह रहा हूं, जो आक्रोश मेरे भीतर खौल रहा है उसे हम इसी किस्म के सामूहिक प्रयास से व्यक्त कर सकते हैं।

'आपस की बात' कालम महत्वपूर्ण है। कम से कम यह एक ऐसा मंच तो मुहैया कराता है कि इस जात-धरम-किस्मत-करम के मूर्खतापूर्ण बकवास के घेरे से बाहर आकर हम एक मेहनतकश की तरह अपने दुःख, दर्द, काम की परिस्थितियों को अन्य तमाम मेहनतकश साथियों से साझा कर सकते हैं।

यूं तो मैं पूर्वी उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूं। काम की तलाश में मैं नोएडा आया। बड़ी मशक्कतों के साथ महीनों घूमने के बाद यहां मुझे काम मिला। जहां मैं रहता हूं वहां से 30 किमी दूर (ग्रेटर नोएडा) काम करने जाना होता है। जिस कम्पनी में मैं काम करता हूं उसके काम और नाम में कोई तुक समझ में नहीं आता। मेरी कम्पनी का नाम (बिगेस्टो फूड प्रा.लि.) है मगर काम टी.वी. असेम्बलिंग का होता है। साथ ही फूड सीडी. व आडियो का भी। टी.वी. कम्पनी का नाम सुनते ही लगेगा कि ऐसी कम्पनियों में कोई भारी श्रम का काम नहीं होता है मगर भीतर पहुंचते ही यह भ्रम टूट जाता है। असेम्बलिंग से लेकर पैकिंग तक पूरी प्रक्रिया में भारी मानसिक व शारीरिक श्रम लगता है। हमारी कम्पनी में करीब 100 परमानेंट तथा लगभग इतने ही कैजुअल तथा 350 ठेके पर काम करने वाले मजदूर हैं। इन तीनों श्रेणियों का आपस में कोई तालमेल नहीं बैठता। परमानेंट मजदूर कैजुअल को दबाता है और कैजुअल ठेके पर काम करने वाले मजदूरों को और ये दोनों मिलकर ठेके पर काम करने वाले मजदूरों को दबाते हैं। हमारी कम्पनी में भी मजदूरों के साथ अन्य कम्पनियों की तरह व्यवहार होता है। जैसे कि जबरिया 'ओवर टाइम'? मजदूरों से अबे-तबे की सड़क छाप भाषा में बात करना। काम की गति बढ़ाने के लिए मजदूरों के सिर पर सुपरवाइजर हमेशा सवार रहता है, सुपरवाइजरों के सिर पर प्रोडक्शन मैनेजर सवार रहता है तथा इन दोनों पर जनरल मैनेजर सवार रहता है। कम्पनी वर्कशाप में साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिसमें दर्जन भर लड़के लगे हैं जिन्हें कंपनी का कैशियर (जो कैशियर कम सफाई सुपरवाइजर ज्यादा लगता है) इन लड़कों के शरीर का सारा कस-बल शाम होते-होते निचोड़ डालता है। जिसका बयान भूपेंद्र सिंह की कहानी 'नीबू और शिकंजा' बखूबी करती है।

उठने-बैठने, साफ-सफाई और बोलने-बतियाने को लेकर पर्सनल मैनेजर और ठेकेदार की टोका-टाकी निरंतर होती रहती है। मगर उनके भेजे में यह बात समझ में नहीं आती कि 1600 से 1800 रुपये की तनख्वाह में एक मज़दूर, जो कि फैक्ट्री में ही 12-14 घंटे का समय गुजारता हो, उसके पास कब समय बचता है कि वह अपने को पूरी तरह चाक-चौबंद रख सके। फिर भी उसकी कोशिश तो यही रहती है कि वह बढ़िया पहने-ओढ़े।

ठेकेदारी की मार्फत काम करने वालों में लगातार किये हुए काम के घंटों को कम कर देने की साजिश होती रहती है। मगर इसके बावजूद तनख्वाह समय से मिल जाता है। ठेकेदारी के मजदूरों से अपने आर्थिक हक के प्रति सजगता कैजुअल व परमानेंट मजदूरों से ज्यादा दिखायी देती है। लड़-झगड़ कर अपना हिसाब ठीक करा लेते हैं। यह अलग बात है कि अपने अधिकारों के बारे में वे कम ही जानते हैं। भर्ती के दौरान यह बात मेरे समझ में बिल्कुल नहीं आयी कि 25 जगह, जिनमें कि रसीदी टिकट भी लगा था और साथ में दो सादे कागजों पर दस्तखत क्यों करवाया गया। हर महीने पेमेंट पर हमें ठेकेदार के रजिस्टर पर साईन करना पड़ता है। इस क्रिया में भी मुझे साजिश की बू आती है। अगर कभी किसी ने पूछा तो उसे डपट दिया जाता है और नसीहत दी जाती है कि अपने काम से मतलब रखो।

इस जबरिया श्रम, शोषण और उत्पीड़न का कोई संगठित प्रतिरोध हमारी कंपनी में नही है। न ऐसा कुछ इतिहास ही रहा है। बस ले देकर विरोध की एक ही घटना है। चाय की क्वालिटी को लेकर कुछ साथियों ने पिछले दिनों हंगामा मचाया था। मैनेजमेंट ने उन तीन मुखर विरोधियों को निकाल बाहर किया। यह कहते हुए कि "जो भी असहमति हो वह सीधे हमसे बातचीत द्वारा हल करो। हंगामा या नेतागिरी द्वारा नहीं। हम इस कंपनी में यूनियनबाजी नहीं चलने देंगे।"

इस घटना का मोटा-मोटी प्रभाव यह हुआ कि फिलहाल हमारी कम्पनी में मरघटी शान्ति है। मजदूर बिना चूं-चपड़ किये अपनी हड्डियां गला रहे हैं। मैं सोचता हूं कि हम मजदूर होते हुए भी क्यों मैनेजमेंट के सामने अपनी एकजुटता कायम नहीं कर पाते? लड़ने वाले साथियों के साथ क्यों नहीं खड़ा हो पाते? आखिर हम कब तक जाति-धरम-क्षेत्र और कैजुअल, परमानेंट, ठेके के मजदूरों में अपने को बांट कर रखे रहेंगे। क्यों नहीं हम इन मालिकों के नकली बाड़ाबंदियों को तोड़ कर इनके दमन और शोषण के खिलाफ लड़ते?

किशन, नोएडा

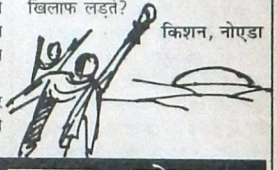

भागो नहीं, भाग्य बदलो

'आसमान से गिरा खजूर पर अटका' यह कहावत तब चरितार्थ हो जाती है जब सुन्दर नगर के सुरती हौजरी से काम छोड़कर कटर मास्टर किशनलाल अपने 12 दर्जियों और एक फ्लैट मास्टर प्यारे लाल 70 फ्लैट कारीगरों को साथ लेकर शिवपुरी स्थित नेफ-नेफ शुभम निटवियर में इस उम्मीद से गये कि कुछ सकून के साथ रोजी-रोटी कमा सकें। नेफ-नेफ निटवियर के मालिक संजीव कुमार ने किशनलाल और प्यारेलाल को अपनी बातों में फंसाकर या पैसे का लालच देकर अपने यहां बुलाया और बन्द पड़ी हुई फैक्टरी को चालू करवाया। जिस समय फैक्टरी चालू हुई उस समय काम की तेजी थी। उस समय मजदूरों की क्षमता से ज्यादा काम लिया जाता था यानि सुबह 8 बजे से रात को 9.30 बजे तक। यदि कभी फैक्टरी जाने में देर हो जाती तो मालिक कहता कि घड़ी देखो कितना टाइम हो रहा है और शाम को किसी वजह से छुट्टी करना चाहे तो छुट्टी नहीं मिलती थी। इस फैक्टरी की प्रोडक्शन (उत्पादन क्षमता) का इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि लगभग 165 फ्लैट, पांच इन्टरलॉक, 7 लिंकिंग, 12 सिलाई मशीन, चेकर, हेल्पर तथा अन्य लोग लगभग 225 मजदूर काम करते हैं, जिसमें 8 महिला मजदूर भी हैं। आज जबकि काम मंदा चल रहा है तो घड़ी की तरफ इस मालिक का कभी ध्यान नहीं जाता है। सुबह कभी 9 बजे खोलता है तो कभी 10 बजे। यही नहीं हद तो तब हो जाती है जब पैसे लेने का समय आता है। न एडवांस का कोई समय और न पेमेन्ट का। कब मिलेगा कोई भरोसा नहीं होता। यानी आपकी जरूरी काम जाये भाड़ में मजदूरी की कोई सुनवाई नहीं होती। मालिक के इसी व्यवहार के कारण कुछ वर्ष हौजरी बन्दी थी। ये तो मास्टरों की शराफत कहिए या लालच कि हौजरी चल पड़ी। कहा जाता है कि काम भी ऐसा चला की न तो पहले कभी ऐसा चला होगा न ही भविष्य में ऐसा चलने की उम्मीद है। हर बार पैसे के लिए शोर शराबा करना पड़ता है तब कहीं जाकर पैसा मिलता है। यह तभी संभव हुआ है जब यहां के स्थानीय मजदूर और बिहार, यू.पी से आये मजदूर मिलकर एकता कायम किये हैं।

मैं लुधियाना में 1993 से रहता हूं, लेकिन पहली बार यहां (प्रचलित भाषा यानि बिहार, यू.पी. के मजदूर और पंजाबी स्थानीय मजदूर) स्थानीय मजदूर और दूसरे राज्यों से मजदूरों में एकता देखी और उसमें भागीदार भी बना। यह-देखकर इतनी खुशी हुई कि मैं शब्दों में बयां नहीं कर सकता। काश! हर जगह हर हौजरी में ऐसा ही होता तो हमारे अन्दर नई सोच पैदा होती और आपसी नफरत खत्म होती और ऐसा हमें हर हाल में करना ही होगा क्योंकि और कोई चारा नहीं है।

आपसी मतभेद भुलाकर प्रेम और भाईचारे का रिश्ता कायम करना होगा। यही एकता हमारा हथियार है, यह एक ऐसा हथियार है कि इसका गोला बारूद कभी खत्म नहीं होता और न ही इसमें पैसा लगाना पड़ता है। बस जरूरत है तो मजदूरों को मजदूर विचारधारा से लैस होने और आपसी सोच समझ को बेहतर बनाने की। मैं सभी मजदूर साथियों से पुरजोर अपील करता हूं कि भागने के बजाय संगठित होकर लड़ने की कला को अपनायें और यह कला, सोच मजदूर अखबार 'बिगुल' के माध्यम से पढ़ने और सीखने को मिलता है कि किस तरह होण्डा पावर प्रोडक्ट के साथी लड़ते हैं। वे हमारे मार्गदर्शक बन सकते हैं, समय-समय पर 'बिगुल' द्वारा हमें नई शिक्षा, संदेश मिलता रहता है जिसका हम लोग अनुसरण करके लड़ने के लिए तैयार हो सकते हैं। कहा जाता कि 'भागो नहीं भाग्य बदलो'। जब नेपालियन चाकू से चीरकर राजा बनने की रेखायें अपने हाथ में बना सकता है तो हम मजदूर जो पूंजीपतियों के लिए स्वर्ग बनाते हैं अपने लिए स्वर्ग क्यों नहीं बना सकते। जागो! जागो मजदूर साथियों, बदलते श्रम कानून के फंदे से बचना चाहते हो तो जागो नहीं तो इससे भी बदतर जिन्दगी जीनी पड़ेगा। नहीं तो एक रोज चारो तरफ संजीव कुमारों का ही अत्याचार व दबदबा कायम हो जायेगा।

सुरेन्द, लुधियाना

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आवादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

◆ शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ◆ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ◆ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ◆ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ◆ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर ◆ जनचेतना, डी 68, निरालानगर लखनऊ ◆ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8-30) ◆ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ◆ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ◆ विजय कुमार, 55/3, E.W.S. आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ◆ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ◆ राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ◆ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ◆ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज-1, दिल्ली ◆ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, दिल्ली ◆ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ◆ डी.के. सचान, एस.एच.- 272, शास्त्रीनगर गाजियाबाद ◆ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी. 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ◆ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो.-तेघड़ा, बेगूसराय ◆ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ◆ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक जबलपुर ◆ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला सिरसा ◆ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ◆ सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ◆ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ◆ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ◆ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ◆ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ◆ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

क्या कर रहे हैं आजकल पंजाब के 'कामरेड'?

सी.पी.आई. तथा सी.पी.एम. जैसे संसदमार्गियों के अलावा इस समय पंजाब में अपने आप को कम्युनिस्ट क्रांतिकारी कहलाने वाले, मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद/विचारधारा का जाप करने वाले लगभग आधा दर्जन संगठन सक्रिय हैं। कम्युनिस्ट पार्टियों, संगठनों के नाम पर सक्रिय ये भांति-भांति के 'कम्युनिस्ट' आजकल यह भूल हो गये हैं कि कम्युनिस्ट पार्टी/संगठन सर्वहारा वर्ग का अगुवा दस्ता होता है, जिसके लिए सर्वहारा वर्ग के हित सर्वप्रथम होते हैं। इनके द्वारा निकाली जा रही अलग-अलग पत्र-पत्रिकाओं से आज मजदूर गायब है। मजदूर वर्ग की लड़ाई, उसके सपने, उम्मीदें, दुःख दर्द तथा उसकी विचारधारा भी गायब है। कुछ है तो वह है, किसानों को बचाने की चीख-पुकार। किसानों में भी अमीर गरीब किसानों के बीच कोई फर्क नहीं, बल्कि सभी किसानों को बचाने, उनके कर्ज माफ करने तथा उनके मुनाफे को बढ़ाने की चिंतायें इन 'कम्युनिस्टों' के सिर बढ़कर बोल रही हैं। संक्षेप में कहें तो इन दिनों पंजाब में सक्रिय भांति-भांति के कम्युनिस्टों का धनी किसानों (कुलकों) या कृषि बुर्जुआजी से टांका भिड़ा हुआ है। पिछले कुछ सालों से पंजाब का किसान आन्दोलन स्थानीय मीडिया की सुर्खियों में है। राष्ट्रीय मीडिया में भी इसकी अक्सर चर्चा होती रहती है। लगभग दो साल पहले सी.पी.आई, सी.पी.एम. तथा पंजाब के अलग-अलग नक्सली संगठनों द्वारा चलाये जाने वाले पांच किसान संगठनों का साझा मोर्चा बनाकर एक आन्दोलन शुरू कियागया था जिसको इन्होंने 'कर्जा मुक्ति तथा किसान बचाओ संग्राम' का नाम दिया था। मगर किसानों में कोई खास समर्थन न मिलने के कारण जल्दी ही यह मोर्चा बिखर गया था। मगर तीन महीने पहले यह बिखरा हुआ कुटुम्ब फिर इकट्ठा हो गया। इस बार संगठनों की संख्या अधिक भी है क्योंकि कुछ किसान संगठनों में फूट पड़ जाने से इस कुटुम्ब में दो नये सदस्य शामिल हो गये थे। इस बार मुद्दे भी कुछ अलग थे। इस बार मुख्य मुद्दा था धान की कीमत 600 रु. प्रति कुन्तल से बढ़ाकर 750 रु. करवाना। इसके अलावा और मांगें थीं, दूध की कीमत में बढ़ोत्तरी, किसानों का कर्ज माफ करवाना, कैप्टन सरकार द्वारा शुरू किये गये किसानों के मोटर के बिजली बिल माफ करवाना जो अकाली सरकार के समय माफ थे।

इन मांगों को लेकर इन कम्युनिस्ट किसान संगठनों ने आंदोलन शुरू किया। मगर इस बार भी यह फ्लाप शो ही साबित हुआ। 29 अक्टूबर 2002 को इन्होंने 'पंजाब बंद' का आह्वान किया। मगर पंजाब के लोगों ने इस आह्वान को तवज्जो नहीं दिया। इन दिनों यह मोर्चा फिर बिखरा हुआ है। अलग-अलग संगठन अलग-अलग रहकर किसानों से मोटरों के बिलों का बायकाट करवाने में जुटे हैं तथा बिजली कर्मचारियों से लड़-झगड़कर अपने लड़ाकूपन की नुमाइश लगा रहे हैं।

कोई भी वर्ग अपने हितों के लिए लड़ने को आजाद है। वह खुशी से अपनी लड़ाई लड़े। मगर दुःख की बात तो यह है कि पंजाब की धरती पर यह सब कुछ कम्युनिस्टों के भेष में हो रहा है। इन कम्युनिस्टों की रहनुमाई में लड़े जा रहे इन किसान आन्दोलनों की मांगें मजदूर विरोधी तथा ग्रामीण धनी किसानों के हित में है। मजदूरों के रोजमर्रा के उपयोग की वस्तुओं जैसे, गेहूं, धान तथा दूध आदि की कीमतों में बढ़ोत्तरी तो सीधे-सीधे मजदूरों की जेब पर डाका है। ऊपर से सितम यह है कि इस डाकेजनी में कोई और नहीं बल्कि खुद को मजदूर वर्ग के प्रतिनिधि कहलाने वाले रंग-बिरंगे कम्युनिस्ट ही जाने-अन्जाने मददगार बन रहे हैं।

जहां तक किसानों के मोटरों के बिल माफ करने की मांग का सवाल है, जिस पर यह टिप्पणी लिखे जाने तक भी आन्दोलन जारी है।

इसकी असलियत यह है कि गरीब किसानों (अर्ध सर्वहाराओं) के पास तो बिजली की मोटरें है ही नहीं। ज्यादातर गरीब किसानों के पास या तो सिंचाई का कोई साधन ही नहीं है। अगर है तो वह डीजल इंजन है। कम जमीन वाले ज्यादातर किसान सिंचाई के लिए धनी किसानों पर निर्भर हैं। पंजाब की कुल बिजली की मोटरों की भारी संख्या धनी किसानों के पास है या कुछ एक में छोटे किसानों के पास। कई अमीर किसान (कृषि पूंजीपति) तो ऐसे हैं जिनका मोटरों का बिल लाखों में बनता है। जैसे कि जंगबहादुर सिंह संघा (नकोदर), प्रकाश सिंह बादल, पूर्व मुख्यमंत्री, हरिचरन सिंह बराड़ (मुक्तसर) आदि-आदि।

इस विश्लेषण से यह आसानी से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि कम्युनिस्ट संगठनों/ पार्टियों के नाम पर पंजाब में सक्रिय संगठन आज किसके हित में खड़े हैं और किसके विरोध में। यह है रूसी नरोदवाद के भारतीय संस्करण की एक झलक। नरोदवाद के इस भारतीय संस्करण की और चीरफाड़ करना और मजदूर जमात के बीच इसकी असलियत को उजागर करना भारत की सर्वहारा क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए निहायत जरूरी है।

सुखदेव

ब्याज दरों में कटौती, मुनाफाखोरों की एक और डकैती

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। महामंदी के दुश्चक्र में फंसा विश्व पूंजीवाद इससे निकलने का जितना भी प्रयास कर रहा है वह उसमें उतना ही उलझता जा रहा है। अपने इस अन्तकालिक रोग से मुक्ति के हर प्रयास का ज्यादा से ज्यादा बोझ वह दुनिया को आम मेहनतकश जनता विशेषकर भारत जैसे गरीब मुल्कों की बदहाल जनता पर डालता जा रहा है। सरकार एक मैनेजिंग कमेटी की भांति उन्हीं नीतियों को लागू करती है जिनसे देशी पूंजीपतियों और उनके विश्व साम्राज्यवादी बड़े भाइयों का हित सधता है या मुनाफे में और बढ़ोत्तरी होती है। पिछले वर्षों से ब्याज दरों में लगातार कटौती को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

एक अध्ययन के मुताबिक वर्तमान वित्तीय वर्ष (अप्रैल 2002-मार्च 2003) के प्रथम तिमाही में ब्याज दरों में कटौती के कारण बड़ी कम्पनियों को भारी मुनाफा हुआ। रिपोर्ट के अनुसार इस प्रथम तिमाही (अप्रैल-जून 02)

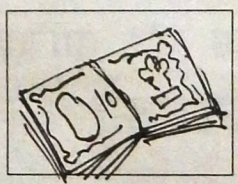

में शीर्ष की 802 कम्पनियों का ब्याज पर खर्च 5233 करोड़ रुपये से घटकर 4095 करोड़ रुपये रह गया। यानी इन कम्पनियों को 1138 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ हुआ। 22 प्रतिशत ब्याज खर्च में कटौती के कारण इनका मुनाफा 46 प्रतिशत बढ़ गया। उल्लेखनीय है कि यदि कर्ज पर ब्याज दर कम नहीं होता तो इन कम्पनियों का मुनाफा महज 14 प्रतिशत होता और 77 कम्पनियों को मुनाफे की जगह नुकसान उठाना पड़ता।

इसी प्रकार पिछले वित्त वर्ष (अप्रैल- 2001-मार्च 2002) में ब्याज दरों में इसी कटौती के कारण 2270 कम्पनियों की 4100 करोड़ रुपये की शुद्ध बचत हुई थी।

दरअसल बैंकों में आम जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा जमा होता है। छोटे-छोटे 'बचत' के रूप में जमा होने वाली यह भारी राशि पूंजीपतियों के मुनाफे का साधन बनती है। जाहिर तौर पर ब्याजदरों में लगातार हो रही कटौती जनता के खून पसीने की कमाई पर मुनाफाखोरों की एक और डकैती है।

गरीब की मजबूरी सफेदपोशों के लिए गुर्दा "दान"

पंजाब प्रांत के अमृतसर जिले में दो गरीबों की गुर्दा 'दान' के दौरान मौत हो गयी। गरीबी के बेहाली ने इन्हें कुछ रुपये के लिए गुर्दा तक 'दान' करने के लिए मजबूर कर दिया था। इस घटना के बाद गुर्दा काण्ड के एक भयावह, अमानवीय धंधे का पर्दाफाश हुआ। लाखों रुपये के इस धंधे में समाज के "संभ्रांत" डाक्टरों -वकीलों सहित तमाम सफेदपोश लोग लिप्त पाये गये हैं। इस काण्ड का भाण्डा फूटने के बाद मामले की लीपा-पोती के लिए, सतर्कता विभाग की जांच सौंप दी गयी है।

गुर्दादान के नाम पर पूरे पंजाब में एक ऐसा धंधा फैला हुआ है, जिसके जाल में आर्थिक रूप से तंगहाल (गरीब) जनता को कुछ रुपये का लालच देकर फंसाया जाता है। उनसे दान के लिए हलफिया बयान लिखवाया जाता है, फिर उनके गुर्दे को निकालकर एक लाख रुपये और उससे भी ज्यादा कीमत में बेच दिया जाता है। मुख्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार से मेहनत-मजदूरी करने गये गरीब ही इस धंधे के जाल में फंसते हैं। अब तक दर्जनों लोगों की गुर्दा निकलवाने के बाद मौत हो चुकी है। दान की आड़ में सफेदपोशों का यह धंधा काफी बड़े रूप में फैल चुका है।

अभी डेढ़-दो साल पूर्व आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद के निकट कपास की कई फसलों की तबाही और कर्ज के मकड़जाले से त्रस्त लगभग 100 किसानों ने अपने एक-एक गुर्दे बेंच दिये थे। लोग यह खबर भूले नहीं होंगे।

भूख और गरीबी से तंगहाल, पूरे देश के पैमाने पर एक ऐसी आबादी भी है जो काम न मिलने पर रक्तदान केन्द्रों पर अपना खून बेंचकर अपने और अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी जुटाती है।

यह है हमारे देश की एक नंगी तस्वीर। एक तरफ तो समृद्धि के टापू और ऐश्वर्य की मीनारें बन रही हैं, तो दूसरी तरफ है गरीबी और बदहाली में जीते-मरते, अपने गुर्दे से लेकर खून तक बेचने के लिए अभिशप्त आम मेहनतकश अवाम। भूख से मरते या पूरे परिवार सहित आत्महत्या करते लोग। आखिर क्यों?

दरअसल, पूंजीवादी मुनाफे की अंधी हवस ने अमीरी-गरीबी की खाई को बेइन्तहा बढ़ा दिया है। आज पूरी दुनिया के पैमाने पर, व्यापक आम मेहनतकश अवाम के खून-पसीने से निचोड़ी जा रही पूंजी चन्द लुटेरे हाथों में सिमटती जा रही है। मुट्ठी भर अमीरजादों के ऐशो आराम के साधन व्यापक जनता की लगातार बढ़ती तबाही से जुटाये जा रहे हैं। यह आदमखोर मुनाफाखोर व्यवस्था आज पूरे तरीके से संवेदनहीन व अमानवीय हो चुकी है।

आजादी के 56 साल बीत जाने के बाद भी भारत में 40 फीसदी आबादी गरीबी रेखा के नीचे रहती है। वहीं ऊपर के बीस फीसदी अमीरजादों के पास बेहिसाब दौलत है और उनकी विलासिता के सामानों से बाजार लगातार पटता जा रहा है। हालात ये हैं कि राजधानी के महंगे पांच सितारा होटलों से रइसों द्वारा जूठा करके छोड़े गये लाखों रुपये के पकवानों के प्रतिदिन जब पिछवाड़े फेंका जाता है तो उस पर गरीब बच्चे और कुत्ते एक साथ टूट पड़ते हैं।

आज हकीकत यह है कि मुल्क में 25 करोड़ बेरोजगारों की फौज खड़ी हो चुकी है, और लगातार इसमें बढ़ोत्तरी ही हो रही है। भारी संख्या में लोग काम की तलाश में अपनी जगह-जमीन से उजड़कर दिल्ली, पंजाब, मुम्बई, अहमदाबाद, कोलकाता आदि महानगरों में भटकते रहते हैं, भांति-भांति के शोषण के शिकार होते रहते हैं लेकिन फिर भी अपना या अपने परिवार का गुजारा नहीं कर पा रहे हैं। लगातार बंद होते कारखाने, तबाह होती कृषि अर्थव्यवस्था से लोगों के लिए काम के दरवाजे भी बंद होते जा रहे हैं। ऐसी विकट स्थिति में कुछ और राह न सूझने पर खून बेचकर तो कहीं गुर्दा तक बेंचकर गुजारा करने के लिए मजबूर हैं।

लेकिन समस्या का यह कोई समाधान तो है नहीं! आज यह समझने की जरूरत है कि जब तक उत्पादन, मुनाफे और बाजार के लिए होता रहेगा, तब तक ऐसी ही त्रासदियां होती रहेंगी। इसका अंत तो इन अमानवीय कृत्यों को करवाने वाली मुनाफाखोर व्यवस्था के खात्मे के साथ ही होगा। बेशक यह लम्बा-कठिन रास्ता है। लेकिन रास्ता तो बस यही है।

महेश किशन

आपस की बात

डिप्लोमा होल्डरों का मनमाना शोषण

मैं 'बिगुल' का नियमित पाठक हूं और नोएडा में एक विद्युत मीटर बनाने वाली फैक्ट्री में काम करता हूं। साथियों में 'बिगुल' के माध्यम से तकनीकी वर्ग के बेरोजगार नौजवानों के बारे में कुछ कहना चाहता हूं।

आज बेरोजगार आबादी का एक भारी हिस्सा तकनीशियन भी हैं और आज पूरे देश के पैमाने पर छोटी से लेकर बड़ी कम्पनियों द्वारा मनमाने तरीके से इनका शोषण किया जा रहा है। जबसे नयी आर्थिक नीतियां आयी हैं तबसे मुनाफाखोरों द्वारा हमारे श्रम को लूट लेने की होड़ मची हुई है। एक तो हमें प्रशिक्षित ही इस तरह से किया जाता है कि जब हम डिग्री लेकर फील्ड में जाते हैं तो अपने को अन्दर से खोखला और बाहर से पंगु पाते हैं। आज हालत है कि हेल्पर के साथ गेट पर लाइन में लगना पड़ता है। सीधे 12 घंटे पर दस्तखत कराकर 16 घंटे से लेकर 18 घंटे तक दबाव डालकर काम कराया जाता है और नौकरी छूट जाने के दबाव में मजदूर से लेकर सुपरवाइजर तक को यह करना पड़ता है। गालियां और झिड़कियां बोनस में। छुट्टी का तो नाम मत लो। यदि छुट्टी लेना है तो हमेशा के लिए ले लो क्योंकि वे जानते हैं कि हमसे कम वेतन पर काम करने के लिए गेट के बाहर भीड़ खड़ी है। सब जगह ठेकेदारी प्रथा चलती है। यदि सुबह पांच मिनट भी लेट हुए तो आधे-दिन की तनख्वाह काट ली जायेगी।

मेरे ही साथ का पालीटेक्निक किया हुआ लड़का जिसका कक्षा में तीसरा स्थान था और लगभग आनर्स के करीब नंबर भी पाया था, मेरी ही फैक्ट्री में मुझसे 200 रु. कम यानी कुल 1800 रु. पर काम करने के लिए तैयार हो गया। मुझे यह जानकर घोर आश्चर्य हुआ कि बतौर एक डिप्लोमा होल्डर वह 1200 से लेकर 1600 रुपये पर हेल्पर के तौर पर काम कर चुका था। ये है आज के रोजगार की सच्चाई। ऐसे में जी करता है कि उन गुरूजी लोगों को खड़ा करके पूछूं कि कहां गयीं वो आपकी बड़ी-बड़ी बातें जिसमें निजीकरण पर लम्बे-लम्बे भाषण दागा करते थे। हमें समझाया करते थे कि दुनिया जहान की छोड़ो अपनी सोचो। जितना ही मेहनत से पढ़ोगे उतना ही अच्छा नम्बर आयेगा और किसी मल्टीनेशनल निजी कम्पनी में तुम्हारा भविष्य सुरक्षित हो जायेगा। साथियों, हमें सोचना ही होगा 56 वर्षों की इस आजादी पर, जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की कोई गारंटी नहीं है। ऐसे में हमारे पास दो रास्ते हैं, या तो चुपचाप सबकुछ सहते और देखते रहें या धारा के विरुद्ध लामबन्द होकर लड़ने के लिए आगे आयें। क्योंकि दोस्तों, समय हमेशा ऐसा ही नहीं रहेगा। इतिहास गवाह है कि परिवर्तन का पहिया हमेशा नौजवानों के कंधों पर ही घूमा है। बेशक लम्बी लड़ाई है, कठिन लड़ाई है लेकिन हमें आगे आना ही होगा क्योंकि इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं।

जनार्दन, नोएडा

होण्डा व ईस्टर का श्रमिक आन्दोलन

हालात को समझो और अपने संघर्ष को आगे बढ़ाओ!

(बिगुल संवाददाता)

ऊधमसिंह नगर। राज्य की औद्योगिक नगरी ऊधमसिंहनगर के दो महत्वपूर्ण कारखानों, होण्डा पावर प्रो. लि., रुद्रपुर व ईस्टर इण्डस्ट्रीज, खटीमा के श्रमिकों पर प्रबन्धकों का कहर लगातार बरपा हो रहा है। एक बहुराष्ट्रीय जापानी ग्रुप का कारखाना है तो दूसरा देश के नये औद्योगिक घराने सिंहानिया ग्रुप का कारखाना। जहां होण्डा किश्तों में यहां से कारखाने को शिफ्ट करने की प्रक्रिया चला रहा है वहीं ईस्टर के मालिकान भारी छंटनी पर आमादा है। ईस्टर में जहां दो यूनियनों में पहले से ही मजदूर बंटे हुए हैं वहीं होण्डा में मजदूरों का एक ही जुझारू संगठन है। दोनों जगह के मालिकान मजदूरों की एकता को पूरी तरह से छिन्न-भिन्न कर देना और यूनियनों को पंगु बना देना चाहते हैं।

जनरेटर और पम्सेट निर्माता होण्डा फैक्ट्री में प्रबन्धन की शिफ्टिंग की नापाक योजना के खिलाफ मजदूरों ने 7 मार्च से 11 जुलाई तक शानदार आन्दोलन चलाया। बावजूद इसके प्रबन्धन फैक्ट्री की रीढ़ एल्यूमिनियम मशीन शाप को यहां से नोएडा शिफ्ट करने में कामयाब रहा। उसके बाद से उसने पहले मजदूरों के निन्यानबे ,दिन के वेतन को अवैध कटौती की, तमाम छुट्टियां काट लीं, फिर त्रिवर्षीय वेतन समझौता करने की जगह उत्पादन नार्म्स बढ़ाने व वेतन व सहूलियतों में कटौती करने का पत्र दिया, एक साजिश के तहत श्रमिक नेता बी.सी.पाण्डे की सेवा समाप्त कर दी और आन्दोलन करने पर अवैधानिक तालाबन्दी करके मजदूरों की नौ दिनों का वेतन काट लिया। मजदूरों ने इस दौरान 6 दिनों तक 'भूखे रहकर काम करने का' शानदार आन्दोलन चलाया था। प्रबन्धन ने शान्तिपूर्ण माहौल में भी गेट पर पीएसी का कैम्प लगा रखा है और न्यायालय से 300 मीटर परिक्षेत्र में धरना प्रदर्शन पर रोक का स्थगनादेश प्राप्त कर लिया है। लेकिन भय और आशंका के बीच मजदूर संघर्ष की राह पर हैं। उधर श्रम विभाग की मध्यस्थता में त्रिपक्षीय व द्विपक्षीय वार्तायें महज खानापूर्ति बनकर रह गयी है।

पाली धागे व चिप्स, फिल्म निर्माता ईस्टर में कारखाने की प्रमुख यूनियन ईस्टर इण्डिया इम्पलाइज यूनियन के नेतृत्व में पिछले दिसम्बर-जनवरी में मजदूरों ने 20 प्रतिशत बोनस की मांग के साथ व श्रमिकों के अवैध निलम्बन के खिलाफ आन्दोलन चलाया था लेकिन दूसरी यूनियन के आन्दोलन में शामिल न होने और धीरे-धीरे मजदूरों की एक भारी आबादी के टूटकर काम पर चले जाने के कारण मजदूरों की हार हुई, 28 श्रमिक निलम्बित रहे। फैक्ट्री के भीतर धीरे-धीरे प्रबन्धन का शिकंजा कसता गया। निलम्बित 28 श्रमिकों की सेवा समाप्ति के साथ 3 और श्रमिकों की सेवा समाप्त कर दी गयी। कारखाने से 'स्वैच्छिक सेवा योजना' के तहत मजदूरों को निकालने का कार्यक्रम दो वर्षों से चल रहा था। इस दौरान इस योजना ने ऐसी गति पकड़ी कि महज पिछले तीन माह के दौरान दो दर्जन से ज्यादा मजदूर बाहर किये जा चुके हैं। मजदूरों के दिल में ऐसा खौफ बैठा हुआ है कि न जाने कब उन पर गाज गिर पड़े। उधर यूनियन महज कानूनी पचड़ों में उलझकर रह गयी है। अतीत में दोनों कारखानों की यूनियनों ने कई शानदार संघर्ष किये और मजदूरों की तमाम सहूलियतें भी दिलवाई हैं। होण्डा के श्रमिक तो इससे भी आगे बढ़कर इलाके के दूसरे कारखानों और सरकारी विभागों तक के आन्दोलन में अपनी भागीदारी निभाते हुए अपनी वर्गीय पक्षधरता प्रदर्शित कर रहे हैं। लेकिन फिर भी आज वे एक कठिन मुकाम पर खड़े हैं। जाहिरा तौर पर इसका एक मुख्य कारण आज के दौर और हालात हैं।

उदारीकरण के इस दौर में निजीकरण छंटनी-तालाबन्दी एक हकीकत बन चुकी है। वक्ती तौर पर आज पूरे देश के मजदूर आन्दोलन के पीछे खिसकते जाने व बिखराव के कारण पूंजीपतियों की आक्रामकता ज्यादा बढ़ गयी है और सरकार, प्रशासन, श्रम विभाग से लेकर न्यायपालिका तक खुलकर मालिकों के पक्ष में खड़ी हो चुकी हैं। लम्बे संघर्षों के दौरान प्राप्त श्रम अधिकारों को छीनने का क्रम चल रहा है और अब तक का सबसे घातक मजदूर विरोधी श्रम कानून पारित होना अब महज औपचारिकता रह गयी है। देश में मौजूदा ट्रेड यूनियन आन्दोलन अपने अतीत के चवन्नी-दुअन्नी के अर्थवादी आन्दोलनों के कारण धीरे-धीरे करके अपने लड़ने की क्षमता को खत्म करता गया है, ट्रेड यूनियन आन्दोलन की मठाधीशी ने संघर्षों को मालिकों के रहमोकरम पर छोड़ दिया है और कुल मिलाकर मजदूर आन्दोलन अपने संघर्षों की राह से पूरी तरह से भटक गया है। आज जहां कहीं भी जुझारू संघर्ष चल भी रहे हैं वहां के संघर्ष अपने कारखानों या विभागों तक ही सिमट कर रह गये हैं।

यह एक कड़वी सच्चाई है कि यदि जुझारू से जुझारू मजदूर साथी यूनियनों के जरिये महज अपने कारखाना स्तर पर मजदूरों की मांगों को लेकर लड़ते रहेंगे और उसे व्यापक मजदूर वर्ग की लड़ाई और ऐतिहासिक मिशन की शिक्षा नहीं मिलेगी तथा कदम-ब-कदम उसके अमली प्रशिक्षण की प्रक्रिया से नहीं गुजारा जायेगा, तो आगे चलकर ऐसी यूनियन अर्थवादी यूनियन बन जायेगी और वह जुझारू साथी या नेतृत्व अर्थवाद के दलदल में गले तक धंसा हुआ एक ट्रेड यूनियन नौकरशाही ही बन सकता है।

आज होण्डा हो या ईस्टर या अन्य किसी कारखाने के मजदूर उनके लिए यह गांठ बांधने की बात है कि सबसे पहले उन्हें जाति-धर्म-क्षेत्र या किसी भी प्रकार के संकीर्णताओं और विवादों से उबर कर फैक्ट्री स्तर पर अपनी व्यापक एकजुटता बनानी होगी। दूसरे, महज आर्थिक लाभ के लिए लड़ने की मानसिकता को बदलकर अपने वर्गीय हक को भी पाने का संघर्ष करना होगा। तीसरे, उन्हें अपने संघर्षों को अपने कारखाने की चौहद्दी से बाहर निकलकर मेहनतकशों की व्यापक इलाकाई एकता कायम करनी होगी। चौथे, उन्हें हमेशा देश की मौजूदा नीतियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा और अपनी छोटी-बड़ी लड़ाइयों को अपने मुक्तिकामी संघर्ष के एक हिस्से के तौर पर चलाना होगा। पांचवें, कोर्ट कचहरी, श्रमविभाग को अधिकतम संभव जितना इस्तेमाल किया जा सकता है करना चाहिए, लेकिन अपना ध्यान अपने एकताबद्ध संघर्षों पर ही केन्द्रित करना चाहिए। इसी रोशनी में होण्डा व ईस्टर के मजदूरों को अपने संघर्षों को आगे बढ़ाना होगा।

रामाविजन में छंटनी, बंदी की एक और साजिश

मालिक के खतरनाक साजिश को पहचानो

(बिगुल संवाददाता)

किच्छा (ऊधमसिंह नगर)। स्थानीय ब्लैक एण्ड व्हाइट पिक्चर ट्यूब निर्माता रामाविजन लि. के प्रबन्धन ने यहां के मजदूरों पर एक और हमला बोल दिया हैं उसने मजदूरों से अपना हिसाब ले लेने की धमकी दे दी है। प्रबन्धन की दमनात्मक और निरंकुश कार्रवाइयों से पहले से ही त्रस्त मजदूरों में भय, आशंका और आक्रोश काफी बढ़ गयाहै।

कुख्यात जैन ग्रुप के इस कारखाने के महाप्रबन्धक ने मजदूरों से साफतौर पर यह कह दिया है कि कारखाने की स्थिति ठीक नहीं है, लोग हिसाब ले लें। पिछले दिनों महाप्रबन्धक ने मजदूरों कर्मचारियों अधिकारियों से धमकी भरे अंदाज में बोला कि कारखाना घाटे में है इसलिए दिसम्बर अन्त तक सभी लोग हिसाब ले लें। उसने कहा कि इस दौरान जो हिसाब ले लेंगे उन्हें अपने फण्ड के साथ ग्रेच्युटी भी मिलेगी, बाद में कोई भरोसा नहीं ग्रेच्युटी मिल भी सकती है और नहीं भी। प्रबन्धन का यह भी कहना है कि जिसे इससे अतिरिक्त चाहिए वह न्यायालय की शरण में जा सकता है।

प्रबन्धन ने साफ तौर पर कह दिया है कि जनवरी, 2003 से कारखाना जितने दिन चलेगा हम महज उतने ही दिन का वेतन देंगे। शेष समय का बेसिक पर ले आफ (आधा बेसिक) देंगे। यही नहीं प्रबन्धन ने बड़ी चालाकी से हिसाब किताब ले लेने वाले श्रमिकों के सामने एक प्रस्ताव रखा। उसने कहा कि जो श्रमिक इस दौरान नौकरी छोड़ देंगे। वह उन्हें पुनः (दैनिक वेतनभोगी के तौर पर) रख लेगा। इस प्रस्ताव के तहत वह आपरेटर व चार्जमैन ग्रेड के लोगों को आठ घण्टे का 90 रुपये और सहायक या ट्रेनिंग ग्रेड का 60 रुपये दिहाड़ी देगा। वैसे फिलहाल यहां श्रमिकों को महज दो हजार से ढाई हजार रुपये मासिक वेतन मिलता है।

प्रबन्धन ने श्रमिकों के सामने (अपने चमचों के माध्यम से) पुनः यह अफवाह फैलवा दिया है कि इस कारखाने का कोई भविष्य नहीं है और जिनकी नौकरी के दस वर्ष पूरे हो जाएंगे उनका आधा फण्ड पेंशन में चला जाएगा और वह पैसा लम्बे समय के लिए फंस जाएगा। इसी अफवाह के कारण पिछले तीन वर्षों के दौरान 60 प्रतिशत से ज्यादा श्रमिक अपना हिसाब लेकर जा चुके हैं और लगातार नौकरी छोड़कर जा रहे हैं। प्रबन्धन के वर्तमान शिगूफे के बाद शेष श्रमिकों में से लगभग 70 फीसदी श्रमिकों ने नौकरी छोड़ने का मन बना रखा है।

इस कारखाने में एक समय में यहां 400 से ज्यादा श्रमिक काम करते थे। प्रबन्धन का यहां पर शुरू से ही दमनात्मक रवैया रहा है। इसके खिलाफ यहां के श्रमिकों ने अपने आप को संगठित किया और सन 1993 व 1998 में दो बार शानदार आन्दोलन किये। इस दौरान यहां के श्रमिकों ने यूनियन बनाने के कई असफल प्रयास किये। 1998 के तीन माह के लम्बे आन्दोलन जो कि कुछ श्रमिकों की गद्दारी व नेतृत्व का अंतिम वक्त में प्रबन्धन की घड़ियाली आंसू से पिघल जाने से जीतते हुई लड़ाई हार जाने के बाद से प्रबन्धन लगातार हावी होता चला गया। पहले उसने नेतृत्व के पांच साथियों को बाहर किया फिर धीरे-धीरे तमाम तरीके के षडयंत्रों से श्रमशक्ति कम करता गया। उस वक्त तक बगैर किसी अतिरिक्त ओवरटाइम के 12-12 घण्टे की शिफ्ट ड्यूटी बदस्तूर जारी रही।

लेकिन पिछले लगभग डेढ़ साल से रामाविजन के प्रबन्धन ने अपना नया कानून बनाते हुए 8 घण्टे के दैनिक कार्यदिवस की जगह महीने के 208 घण्टे की कार्य अवधि का फण्डा रखा। इसके लिए महीने में बमुश्किल 15-16 दिन प्लाट चलाया जाता था। इसी दौरान श्रमिकों को अपने मासिक घण्टे पूरे करने होते रहे। प्लाण्ट कब चलेगा और कब नहीं, यह भी मालिक की मर्जी पर है। कभी भी पांच-छह दिन प्लांट चला और फिर पांच-छह दिन की छुट्टी। एकदम अनिश्चय का माहौल। कभी भी किसी श्रमिक को बुला लेना, उसे टार्चर करना, कभी घास तक कटवाने लगना आम बात बन गयी। यही नहीं कैजुअल या दैनिक वेतन भोगी की जगह ट्रेनीज के नाम पर तीन-तीन साल से मामूली दिहाड़ी पर खटाने का उपक्रम प्रबन्धन लगातार कर रहा है। किसी के लिए भी न तो ये स्लिप की व्यवस्था है और न ही सुरक्षा चिकित्सा की उचित व्यवस्था।

कारखाने में धीरे-धीरे हालात यह बन गये हैं कि वर्तमान समय में महज 128 नियमित श्रमिक बचे हैं। इसके अतिरिक्त 25-30 ट्रेनीज, 6-7 कैजुअल और 50 से 100 के बीच ठेका श्रमिक कार्य कर रहे हैं। पिछले संघर्षों के नेतृत्व के ज्यादातर साथी और दूसरे अपनी लगातार घटती ताकत के कारण कारखाने से निकाले जा चुके हैं एक तो प्रबन्धन इतनी चालाकी से कदम उठा रहा है कि नेतृत्व के या अन्य बचे हुए जुझारू साथी नये संघर्ष की किसी भी योजना पर कार्य नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण उनकी छटपटाहट और मानसिक यंत्रणा लगातार बढ़ती जा रही है। प्रबन्धन ने अपने इसी दबदबा को बढ़ाने के लिए पिछले माह नेतृत्व के एक जुझारू साथी शिशुपाल सिंह को गुण्डागर्दी के दम पर और पुलिस व श्रम विभाग की मिलीभगत से जबरिया इस्तीफा लिखवाकर निकाल बाहर किया था।

रामाविजन के एक श्रमिक के अनुसार इस कम्पनी के मालिकान जैन ग्रुप का एक दमनात्मक इतिहास रहा है। इसने अपने किसी भी कारखाने में यूनियन नहीं बनने दी है। मालिक आज रामाविजन में जो फण्डा अपना रहा है वैसा वह 7-8 वर्षों पूर्व गाजियाबाद स्थित अपने एक अन्य कारखाने कोमो पल्प में भी अपना चुका है। वहां भी प्रबन्धन ने छंटनी के ऐसे ही शिगूफे छोड़े थे। वहां के श्रमिकों ने इसका विरोध किया तो प्रबन्धकों ने एक दिन अचानक गेट बन्द कर दिया भीतर के श्रमिकों को भी बाहर कर दिया और श्रमिकों के मत्थे हड़ताल थोप दी। पुनः यह ऐलान कर दिया कि जिसे हिसाब लेना हो तो ले नहीं तो कोर्ट में चला जाये। आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सका। तमाम मजदूरों ने हिसाब ले लिया। कुछ लेकर कोर्ट की शरण में चले गये जिन्हें आज तक न्याय नहीं मिला। तीन-चार साल बाद ठेकेदारी में कारखाना पुनः शुरू हो गया।

जहां तक इस कारखाने का प्रश्न है तो यह एक कटु सत्य है कि ब्लैक एण्ड व्हाइट पिक्चर ट्यूब का बाजार सिकुड़ता जा रहा है और उस रूप में रामाविजन जैसे कारखाने का कोई भविष्य नहीं है। लेकिन यह भी एक सच है कि यहां खराब रंगीन पिक्चर ट्यूब का रिपेयर भी होता है। इससे साफ जाहिर है कि रंगीन पिक्चर ट्यूब का उत्पादन भी हो सकता है। लेकिन प्रबंधन की मंशा कुछ और है। वैसे भी यहां पुरानी सब्सिडी और करों में छूट खत्म हो चुकी है। ऊपर से नया राज्य बनने से अतिरिक्त टैक्स का झमेला। लिहाजा प्रबन्धन पुराने श्रमिकों से सस्ते में छुट्टी पा लेने के बाद इस प्लाण्ट को बन्द कर देगा।पुनः रंगीन पिक्चर ट्यूब के नाम पर वह नयी सब्सिडी यहां (या फिर कहीं और) उसे शुरू कर देगा। इस प्रकार सांप भी मर जायेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। प्रबन्धन पूरे इलाके के मजदूरों के सहयोग-समर्थन से यहां चले दो शानदार आन्दोलन का सबक भी निकाल चुका है। लिहाजा वह हर कदम फूंक-फूंक कर रख रहा है उसे भी अन्य लुटेरे मालिकों की तरह मजदूर विरोधी नये श्रम, कानून की प्रतीक्षा है।

ऐसी स्थिति में रामाविजन के शेष बचे मजदूरों के सामने अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा है। लेकिन इसके लिए यहां के सभी मजदूरों की फौलादी एकता व इलाकाई मजदूर आन्दोलन के उभार की आवश्यकता है।

चीनी मिल मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान

एस. प्रताप

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का गन्ना आंदोलन इस बार बुरी तरह असफल हुआ। ऐसी शर्मनाक पराजय किसान आंदोलन के निकट अतीत के इतिहास में शायद ही कभी हुई हो। पिछले साल का गन्ना मूल्य 95 रु. प्रति कुन्तल था और अब चीनी मिलों ने 64.50 रुपए प्रति कुन्तल पर गन्ना बेचने के लिए किसानों को मजबूर कर दिया है। इस मूल्य पर तो छोटे किसानों की लागत भी निकल आये तो गनीमत है।

सत्ता के साथ सांठ-गांठ करके चीनी मिलें गन्ना मूल्य कम करने के सवाल पर अड़ी रहीं और गन्ना किसानों को इस हालत में पहुंचा दिया कि या तो वे अपना गन्ना खेत में खड़ा रहने दें और गेहूं कटी फसल से भी हाथ धोएं या गन्ना खेतों में ही जला डालें। या फिर कम गन्ना मूल्य स्वीकार कर मिल मालिकों के हाथों लुटने के लिए तैयार हो जायें। चीनी मिलों को कोई जल्दी नहीं थी क्योंकि उनके गोदाम पहले से ही चीनी से अटे पड़े हैं। उनकी एक साजिश यह भी थी कि इस साल चीनी का उत्पादन कम हो ताकि चीनी के स्टाक को समाप्त किया जा सके और बाजार में चीनी की कीमत गिरने से रोका जा सके। एक पंथ दो काज। एक हाथ से उन्होंने गन्ना उत्पादकों को भी पीटा और दूसरे हाथ से देश की सारी जनता को, जो चीनी का उपभोग करती है।

किसान आंदोलन कितनी हास्यास्पद स्थिति में पहुंच गया है, उसे इस बात से ही समझा जा सकता है कि मिलों में पेराई चालू होने को ही वे अपनी जीत के तौर पर प्रचारित करने की होड़ में लगे हुए हैं। लोकदल वाले इसका सेहरा अजीत सिंह के सिर पर बांध रहे हैं तो भारतीय किसान यूनियन (भाकियू) वाले टिकैत के सिर पर। भाकियू ने यह भी घोषणा की है कि गन्ना मूल्य बढ़ाने की मांग को लेकर हमारा आंदोलन जारी रहेगा। शायद उनमें अभी थोड़ी शर्म बची है या शायद उनकी यह मजबूरी है क्योंकि उन्हें रोज-रोज किसानों के बीच ही रहना होता है।

जहां तक किसानों का सवाल है, खासकर मध्यम एवं छोटे किसानों का, जिनकी तादाद ही सबसे अधिक है, वे इस बार खून का घूंट पीकर रह गये हैं। उनके चेहरों पर हताशा, मायूसी और गुस्से के भाव जैसे एक दूसरे में घुलमिल गये हैं। उनका किसी भी राजनीतिक पार्टी, यहां तक कि भाकियू में भी विश्वास नहीं रह गया है। कुछ नहीं से कुछ भला की स्थिति है। क्योंकि उनकी भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई संगठन मौजूद ही नहीं है। भारतीय किसान यूनियन एक हद तक उनका प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि कैश फसल का इलाका होने के चलते फसल की अच्छी कीमत मिले यह तो उनकी भी मांग है। हालांकि छोटे-मंझोले किसानों के लिए फसल के लाभकारी मूल्य का यह सवाल एक छलावा ही है। यह मुख्यत: धनी किसानों की मांग है जो कि सिर्फ बाजार के लिए और मुनाफे के लिए पैदा करते हैं। लेकिन चूंकि कैश फसल तो छोटे किसान भी बेचने के लिए ही पैदा करते हैं इसलिए उनमें यह भ्रम बना रहता है कि इससे उन्हें भी लाभ हो सकता है। वे इस बात

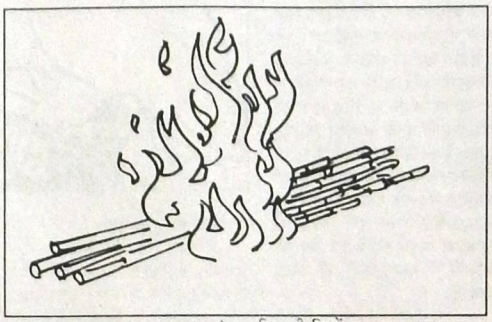

को नहीं समझ पाते कि वे तो कोई और फसल या अन्य उपभोग की वस्तुएं खरीदने के लिए ही अपनी फसल बेचते हैं और फसल के लाभकारी मूल्य का तर्क वहां भी लागू होता है जो वे खरीदते हैं। क्योंकि अमूमन ऐसा नहीं होता कि कुछ खास फसलों का दाम स्वतंत्र तरीके से बढ़ जाये और अन्य के दामों में कोई बढ़ोत्तरी न हो। यहां तक कि लागत मूल्य भी लगभग उसी अनुपात में बढ़ जाता है। अत: लाभकारी मूल्य की मांग से फायदा तो सिर्फ बड़े किसानों को ही है जो उपभोग और लागत मूल्य निकालने के बाद, फसल के बड़े हिस्से को बेचकर शुद्ध मुनाफा कमाते हैं। अगर लाभकारी मूल्य की दर तय कर दी जाय तो लागत मूल्य बढ़ने के साथ उसी जमीन के टुकड़े पर उनका मुनाफा बढ़ता जाएगा जबकि छोटा किसान तबाह हो जाएगा।

छोटे किसानों की असली समस्या तो लागत मूल्य के बढ़ते जाने की है। लेकिन उनकी फसल का वाजिब मूल्य उन्हें मिले इसके लिए भी मिलों से उनका अन्तरविरोध हमेशा बना रहेगा। इस समय किसान आंदोलन की मुख्य मांग लागत मूल्य कम करने पर ही केन्द्रित होनी चाहिए और इसके साथ ही फसल का वाजिब मूल्य पाने के लिए भी मिलों पर लगातार दबाव बनाए रखने की रणनीति अख्तियार करनी चाहिए। लेकिन हो रहा है बिल्कुल उल्टा। लागत मूल्य के सवाल पर तो आवाज उठती ही नहीं, हां, हर मीटिंग में इसका रोना जरूर रोया जाता है। यही वह बिन्दु है जहां छोटे किसान धनी किसानों के संगठन भाकियू के साथ होते हुए भी उससे अलग-थलग पड़ जाते हैं। इस आंदोलन से भी अगर फायदे-नुकसान पर गौर किया जाये तो बड़े किसानों को अधिक नुकसान नहीं हुआ है, उनकी मुनाफे की दर थोड़ी जरूर घट गयी। लेकिन जहां तक छोटे किसानों का सवाल है, आन्दोलन लम्बा खिंचते देख अपनी तबाही से बचने के लिए उन्होंने औने-पौने दाम पर क्रेशरों-कोल्हुओं को गन्ना बेचा। बाजार में गुड़ के दाम गिर जाने से बहुतेरे क्रेशर भी बंद हो चुके हैं। अत: काफी छोटे किसानों ने चारे के रूप में भी अपना गन्ना बेचा ताकि गेहूं के लिए कुछ खेत खाली हो सकें अन्यथा भुखमरी की नौबत आ सकती है। लेकिन बड़े किसानों को पता था कि मिलें जल्दी ही चालू होंगी और सबसे पहले उन्हीं का गन्ना मिलों में जाएगा और फिर साधन सम्पन्न होने के चलते आनन-फानन में गेहूं की बोआई भी कर लेंगे। इसलिए उन्होंने अपना गन्ना खड़ा रखा। प्रचार करने के लिए उन्होंने ही अपना कुछ गन्ना भी खेतों में जलाया। उनके पास गन्ने के खेतों के अलावा भी पर्याप्त जमीन है जिसमें गेहूं की बुवाई उन्होंने पहले ही कर ली है।

इस समय मिलें खुल चुकी हैं लेकिन मिलों की रणनीति अभी भी यही लगती है कि वे इस बार कम से कम गन्ना लेने की कोशिश कर रहे हैं। गन्ना तौल केन्द्र कम हो गये हैं। लगता यही है कि बहुत सारे छोटे किसान इस बार अपना गन्ना मिलों को नहीं दे पाएंगे या कम गन्ना दे पाएंगे। जो भी हो यह साल उन पर भारी गुजरेगा। और इसे चुपचाप बर्दाश्त करने की भी एक सीमा है। देर-सबेर उनका आक्रोश फिर फूटेगा। और परिस्थितियां यह बताती हैं कि छोटे किसान देर-सबेर धनी किसानों के आंदोलन के दायरे से स्वतंत्र अपनी नयी राह खोजने की दिशा में जरूर आगे बढ़ेंगे।

एक और आन्दोलनकारी श्रमिक की मौत

कब तलक मरते रहेंगे, लोग मेरे देस के

(बिगुल संवाददाता)

रुड़की (हरिद्वार)। आज के दौर में शासन-प्रशासन और सरकार इतनी संवेदनहीन हो चुकी है कि लोग अपने हक के लिए लड़ते-लड़ते मर जा रहे हैं फिर भी उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंग रही है। नये बने उत्तरांचल राज्य में आये दिन ऐसी घटनायें घट रही हैं जो सरकारी नीतियों का खुलासा करने के लिए काफी हैं। दो वर्ष के भीतर तीन मुख्यमंत्रियों और दो पार्टियों के शासन काल ने इन नीतियों के जन विरोधी चरित्र को और ज्यादा उजागर किया है।

पिछले साल यहां के इकबालपुर शुगर मिल से सैकड़ों श्रमिकों को निकाल दिया गया। तब से वे आंदोलन की राह पर हैं और रुड़की ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के कार्यालय पर डेरा डाले बैठे हुए हैं। भुखमरी के शिकार आंदोलनरत एक श्रमिक की 27 नवम्बर को मौत हो गयी। अब तक आंदोलन के दौरान मरने वाले श्रमिकों की संख्या सात हो चुकी है। इस हादसे के बाद सभी मिल श्रमिक भूख हड़ताल पर रहे। इसके बावजूद शासन-प्रशासन-सरकार या मिल प्रबंधन के लिए महज यह एक सामान्य घटना बनकर रह गयी।

इससे पूर्व इसी राज्य के ऊधमसिंह नगर जिले में स्थित जसपुर कताई मिल के कई श्रमिक आंदोलन के दौरान भुखमरी का शिकार होकर मौत की नींद सो चुके हैं। यहां काशीपुर और जसपुर की दोनों कताई मिलें विगत चार वर्षों से बंद पड़ी हैं। श्रमिकों को वेतन तक नहीं मिल पा रहा है। सैकड़ों परिवारों के सामने भुखमरी का संकट पैदा हो गया है। उत्तरांचल के वर्तमान मुख्यमंत्री नारायणदत्त तिवारी की लम्बी चौड़ी घोषणाएं इन श्रमिकों के लिए महज ढपोरशंखी राग बनकर रह गयी हैं। यहां के श्रमिक भी विगत चार वर्षों से संघर्ष की राह पर हैं।

सरकार चाहे किसी भी पार्टी की हो, उसके लिए इंसानों की जान से ज्यादा कीमती थैलीशाहों के मुनाफे की

रक्षा और उसकी बढ़ोत्तरी मात्र रह गयी है। सरकारें अब पूंजीपतियों की "एक कुशल प्रबंधकर्ता" के रूप में खुलकर काम करने लगी हैं। ऐसे में पूंजीपतियों की आक्रामकता और ज्यादा खुलकर सामने आ रही है। लोगों की मौत से न तो वे पिघलने वाले हैं और न ही झुकने वाले।

उधर दूसरी तरफ बड़ी-बड़ी ट्रेड यूनियनें, उनके महासंघ और मठाधीश नेताओं के लिए भी ये घटनाएं कोई मायने नहीं रखतीं क्योंकि उन्होंने लड़ने का रास्ता छोड़ दिया है। उनकी गद्दारियों से श्रमिक आंदोलन पीछे खिसकता जा रहा है और मालिकों के हौसले बुलंद होते जा रहे हैं। इसके अलावा जहां लुटेरे मालिकों और सरकार के नापाक गठजोड़ मजबूत हाते जा रहे हैं वहीं मजदूर आंदोलन खण्ड-खण्ड में बिखरता जा रहा है।

इकबालपुर के श्रमिक मंगल सिंह की मौत ने एक बार फिर संवेदनशील मेहनतकश अवाम के सामने यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि आखिर कब तक हम पिसते रहेंगे, मरते रहेंगे। हालात जितने ही कठिन होते जा रहे हैं, चुनौतियां उतनी ही बढ़ती जा रही हैं। यह बात ज्यादा साफ होती जा रही है कि अलग-अलग कारखानों के स्तर पर ही संघर्ष मात्र से कुछ होने वाला नहीं है। ऐसे में यह भी कैसे संभव हो सकता है कि निकाले गये कुछ श्रमिकों का आंदोलन चलता रहे और शेष काम करते रहें और सफलता मिल जाये?

आज के इस दौर में अंतर कारखाना और विभागीय एकता के दम पर ही अपने संघर्षों को मजबूत किया जा सकता है। व्यापक मेहनतकश आबादी की इलाकाई एकताबद्ध संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए आगे आना होगा। अपनी छोटी-बड़ी हर लड़ाई को देश व्यापी श्रमिक आंदोलन का हिस्सा बनाना होगा ताकि मानवद्रोही लुटेरों के ताबूत में अंतिम कील ठोंकी जा सके।

पंजाब की बुर्जुआ सियासत का हाल

चोरों के गिरोहों की लड़ाई, जनता तमाशबीन

(बिगुल प्रतिनिधि)

लुधियाना। जब से पंजाब में कैप्टन अमरिंदर सिंह की सरकार बनी है तब से बादल दल के अकालियों के बुरे दिन आये हुये हैं। अकाली दल बादल के बड़े-बड़े दिग्गज तक के बाद तक भ्रष्टाचार के मामले में फंस रहे हैं। प्रकाश सिंह बादल के मुख्यमंत्री काल में अकाली मंत्रियों ने करोड़ों की जायदाद बनाई है यहां तक कि प्रकाश सिंह बादल, उसकी पत्नी सुरिन्दर कौर तथा सुपुत्र सुखबीर बादल पर अरबों रु. इकट्ठे करने का आरोप है।

पंजाब का बच्चा-बच्चा जानता है कि अकालियों पर लगे ये आरोप बिलकुल सही हैं। क्योंकि पंजाब की जनता ने अकालियों के शासन में यह सब कुछ खुद झेला है। इसलिये किसी को भी अकालियों से हमदर्दी नहीं है। जब से अमरिंदर सरकार ने एक के बाद एक अकाली मंत्रियों को पकड़ना शुरू किया है तब से प्रकाश सिंह इस चक्र से खुद को तथा अपने जरनैलों को बचाने के लिये नये-नये दांव पेंच खोज रहे है। यहां तक कई बार तो बादल अमरिंदर सिंह को धमकी भी दे चुके है कि दुबारा अकालियों की सरकार बनेगी तो कांग्रेसियों के साथ भी यही सुलूक किया जायेगा। यानी एक चोर दूसरे चोर को धमकी दे रहा है कि तुम अगर मेरी चोरी की पोल खोलेगे तो मैं तुम्हारी चोरी की पोल खोलूंगा। क्योंकि एक चोर को ही दूसरे चोर की रणनीति, रणकौशल की गहरी समझ होती है। पंजाब की जनता की तरह प्रकाश सिंह बादल भी यह अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेस पार्टी तो भ्रष्टाचार की अम्मा है, कांग्रेसी भ्रष्टाचार से धन इकट्ठा न करें यह तो किसी भी सूरत में संभव नहीं। पिछले चुनाव में जीते कांग्रेसी विधायकों ने टिकट हासिल करने के लिये, चुनाव लड़ने के लिये, करोड़ों रुपए पानी की तरह बहाया है। अब यह विधायक/मंत्री अपने पूंजी निवेश पर मुनाफा तो चाहेंगे ही। बदला लेने की धमकियों से बादल इन्हीं को डराना चाहते हैं।

जब कैप्टन ने 'भ्रष्टाचार विरोधी अभियान' चलाया तो कई लोग बहुत खुश थे। कइयों को यह विश्वास हुआ कि अब तो पंजाब से भ्रष्टाचार का बीज नाश हुआ समझो। पंजाबी की एक 'वामपंथी' पत्रिका ने तो एक लेख छाप कर पंजाब के लोगों को 'कैप्टन अमरिंदर सिंह की इच्छा पर फूल चढ़ाओ' का आह्वान भी कर दिया। यानी कई निकट दृष्टिकोण वाले लोगों

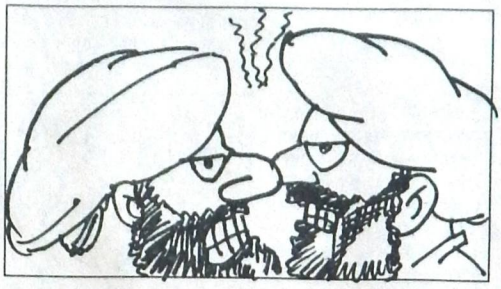

में कैप्टन हीरो बन गया।

मगर अब कांग्रेसियों से भी भ्रष्टाचार के किस्से सामने आने लगे हैं। पंजाब कांग्रेस में कैप्टन की प्रमुख प्रतिद्वंदी, आजकल कैप्टन सरकार में कृषि मंत्री राजिंदर कौर भट्ठल पर तो पहले से ही भ्रष्टाचार का केस चल रहा है। राजिंदर कौर पर 1996 में मुख्यमंत्री होते हुए 29 लाख रुपये के गबन का आरोप है। यह तो उस द्वारा हजम किये पैसे का एक बहुत छोटा हिस्सा ही है जो सार्वजनिक हो गया।

पंजाब में भ्रष्टाचार के मामले पर कांग्रेसी तथा अकालियों की 'लड़ाई' कहा जाये तो दो चोरों की लड़ाई है। मगर जब चोर आपस में लड़ते हैं, ये संसदीय मदारी जनता के सामने बेपरदा हो जाते हैं। बहरहाल कैप्टन हमले पर है और बादल ने इस बार अपने काले कारनामों से जनता का ध्यान हटाने के लिये 'धर्म युद्ध मोर्चा' का शगूफा छोड़ा है। इस 'धर्म युद्ध' में बादल का मुख्य मुद्दा था कैप्टन सरकार द्वारा किसानों की मोटरों पर लगाये गये बिजली के बिल तथा कैप्टन की अन्य जन विरोधी नीतियां। पहले तो बादल ने 27 नवंबर से बेमियादी जेल भरो आंदोलन का ऐलान किया था, मगर बाद में पंजाब के लोगों से बादल के इस आंदोलन को कोई समर्थन न मिलने से इसे 27 नवंबर को एक दिन के लिये जिला मुख्यालयों पर विरोध-प्रदर्शनों में बदल दिया। मगर मुक्तसर जैसे एक-आध जिले को छोड़कर बाकी सभी जगहों पर बहुत ही कम लोग बादल के आंदोलन में शामिल हुए। जिस जनता को अकालियों ने पांच साल तक दोनों हाथों से लूटा, अब अपने कुकर्मों को छुपाने के लिए उसी से हिमायत मांगने गये। मगर लोगों ने इन भिखारियों को खाली हाथ ही लौटा दिया। इस तरह बादल का मोर्चा टाँय-टाँय फिस्स होकर रह गया। पूरे पंजाब में इस आंदोलन का कोई प्रभाव दिखाई नहीं दिया।

पंजाब की जनता जानती है कि 1980 के दशक में अकालियों ने अपने संकीर्ण स्वार्थ को हासिल करने के लिये इसी तरह के मोर्चों की शुरूआत की थी। व्यवस्था के प्रति लोगों के असंतोष को अकालियों के मोर्चों ने हवा दी, जो बाद में खालिस्तानी आंदोलन का रूप धारण कर गई। कांग्रेस ने इस आंदोलन को अपने हित साधने के लिए इस्तेमाल किया था। कांग्रेसी और अकालियों के कुर्सी युद्ध ने 10 साल तक पंजाब के लोगों का खून बहाया था। इस त्रासदी को पंजाब के लोग अभी तक भूले नहीं हैं। अकालियों के 'धर्म युद्ध' मोर्चे को दुत्कारा जाना इस बात की ओर इशारा है कि पंजाब से लोग फिर से 1980 के दशक वाला दौर नहीं देखना चाहते।

अमेरिका के बन्दरगाह मज़दूरों का संघर्ष-एक रिपोर्ट

(कार्यालय संवाददाता)

अमेरिका में 29 बंदरगाहों पर काम करने वाले दस हजार मजदूर शिपिंग कंपनियों के मालिकों के खिलाफ पिछले लंबे समय से संघर्ष का झण्डा उठाए हुए हैं। ये मजदूर इंटरनेशनल लांगशोर एण्ड वेयर हाउस यूनियन में संगठित हैं। मजदूरों की हड़ताल के कारण शिपिंग कंपनियों ने 27 सितम्बर को बंदरगाहों पर लॉकआउट की घोषणा कर दी थी। मजदूरों के संघर्ष को कुचलने के लिए कंपनी मालिकों ने बुश प्रशासन से मदद मांगी। अपने असल वर्ग-चरित्र को दर्शाते हुए मजदूरों का पक्ष जाने बिना ही बुश प्रशासन कंपनी मालिकों के पक्ष में आ खड़ा हुआ।

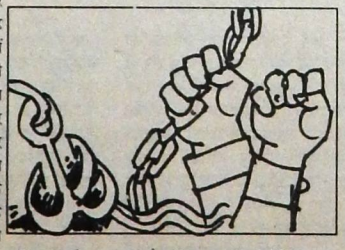

बुश प्रशासन के इशारे पर 8 अक्टूबर को संघीय जज ने टाफ्ट हार्टले कानून (Taft-Hartlay Act) के तहत बंदरगाहों को फिर से चालू करने का निर्देश दिया। अमेरिका एक ऐसा देश है जो (संसदीय) जनवाद का सबसे बड़ा पैरोकार होने का ढिंढोरा पीटता है। मगर इसी देश के मजदूरों को बहुत कम जनवादी अधिकार प्राप्त हैं। अमेरिका का श्रम कानून घोर मजदूर विरोधी तथा मालिकों के पक्ष में है। टाफ्ट हार्टले भी ऐसा ही एक मजदूर विरोधी काला कानून है। इस कानून के तहत कोई भी कंपनी मजदूरों की हड़ताल तोड़ने के लिए कोर्ट से ऐसा अधिकार प्राप्त कर सकती है जिसके तहत मजदूर 80 दिनों तक हड़ताल नहीं कर सकते। यह ऐसा कानून है जो हमेशा से अमेरिकी मजदूरों की नफरत का निशाना बना रहा है। 1947 से लेकर आज तक इस कानून का 33 बार इस्तेमाल किया जा चुका है, इसमें से 11 बार इस कानून का इस्तेमाल बंदरगाह मजदूरों के खिलाफ ही किया गया।

इस बार मजदूरों के संघर्ष का मुद्दा नौकरी या तनख्वाह नहीं था। इस बार संघर्ष का मुद्दा बनी है कंपनियों द्वारा अपनायी जा रही नई तकनीक। शिपिंग कंपनियां इलेक्ट्रानिक कारगो ट्रेकिंग तकनीक लाने जा रही हैं, जिससे काम की रफ्तार बढ़ने से मजदूरों की उत्पादकता कई गुना बढ़ जायेगी। मजदूरों का पक्ष स्पष्ट है। मजदूरों का कहना है कि वे नई तकनीक के विरोधी नहीं हैं। मगर तकनीक के इस्तेमाल से बढ़ने वाली उत्पादकता से मजदूरों को भी लाभ होना चाहिए। मगर शिपिंग कम्पनियों के मालिक नई तकनीक के सारे फल अकेले ही हड़प जाना चाहते हैं। इसी मुद्दे पर मजदूरों और मालिकों के बीच संघर्ष जारी है। विकसित देश के मजदूरों के ये छोटे- बड़े संघर्ष दुनिया भर के मजदूरों के उत्साह का स्रोत हैं और एन.जी.ओ. से टांका भिड़ाये उन बुद्धिजीवियों को भी करारा जवाब हैं। जो यह प्रचार करते हैं कि विकसित देशों में रोजी-रोटी के मुद्दों पर अब संघर्ष नहीं होंगे, कि अब वहां सिर्फ स्त्री आन्दोलन तथा पर्यावरण जैसे के मसलों पर ही आंदोलन होंगे।

शीलचन्द्र एग्रो-आयल्स में मज़दूर आन्दोलन

दमनकारी छोटे मालिक और मज़दूरों के सामने खड़ी चुनौतियां

(बिगुल प्रतिनिधि)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। मजदूरों की एकता से बौखलाए किच्छा रोड लालपुर स्थित शीलचन्द्र एग्रो-आयल्स प्रा.लि. का प्रबन्धन पुलिस-प्रशासन- श्रम विभाग व न्यायपालिका की मिलीभगत से वहां के मजदूरों के दमन का एक नया कुचक्र चला रहा है। प्रबन्धन ने पहले मजदूरों का दस माह का वेतन रोक लिया, फिर दो श्रमिकों को मनमाने तरीके से गेट पर रोक दिया और जब मजदूरों ने इसके खिलाफ कारखाने के भीतर रहकर 11 दिसम्बर से हड़ताल कर दी तो मालिक ने 22 दिसम्बर को अचानक न्यायालय दो कारखाना परिक्षेत्र से 300 मीटर तक धरना प्रदर्शन पर रोक का स्थगनादेश लाकर और भारी मात्रा में पुलिस पीएसी के दम पर कारखाने से मजदूरों को बाहर खदेड़ दिया। इस बीच सहायक श्रमायुक्त की मध्यस्थता में दो बैठकों में अनुपस्थित रहते हुए प्रबन्धन ने यह घोषित कर दिया कि उसके वहां किसी प्रकार का औद्योगिक विवाद नहीं है। अब प्रबन्धन संघर्ष के अगुआ मजदूरों को निकालने की कोशिशें कर रहा है।

तराई क्षेत्र में मौजूद तमाम तेल व राइस मिलों, प्लाईवुड, साल्वेंट आदि कारखानों में छोटे मालिकों द्वारा मजदूरों का दमन और दोहन तथा श्रम कानूनों का खुला उल्लंघन आम बात है। कहीं भी कोई नियमित श्रमिक नहीं है। मजदूरों को मामूली दिहाड़ी पर 12-12 घंटे खटाना और मनमाने तरीके से रखना-निकालना सामान्य बात है। सरकार जिस तरीके का श्रम कानून बनाने की तैयारी में जुटी है, वैसी स्थिति यहां पहले से मौजूद है। इनमें पी एफ न काटना, वेतन स्लिप व पहचान पत्र न देना मामूली बात है। वर्दी जूता व अवकाश न देना तो दूर की बात है, यहां सुरक्षा के भी कोई इन्तजाम नहीं होते हैं। यहां मालिकों का गुण्डाराज चलता है।

"हमारा" ब्राण्ड तेल व घी बनाने वाला शीलचन्द्र भी ऐसा ही एक कारखाना है। यहां पर 160-180 कैजुअल व लगभग 100 ठेका मजदूर लगातार अन्याय झेलते हुए कार्यरत हैं। ऐसी कठिन स्थितियों में यहां के मजदूरों के सुलगते गुस्से ने प्रतिरोध संघर्ष को जन्म दिया और उन्होंने चुपचाप भीतर-भीतर एकजुट होने की राह पकड़ी।

प्रबन्धन को अपने खुफिया तंत्र से इस प्रयास का पता चल गया और उसने पहले मजदूरों को अलग-अलग बुलाकर सुराग लगाने और उन्हें तोड़ने का असफल प्रयास किया।

इसी क्रम में उसने पिछले माह 21 श्रमिकों का और इस माह दो श्रमिकों का गेट बन्द कर दिया और उनका वेतन भी रोक लिया। इससे मजदूर भड़क उठे और संघर्ष की राह पर चले गये। मजदूर अपने साथियों की बहाली, वेतन भुगतान और न्यूनतम श्रम कानून लागू करने की जायज मांग कर रहे हैं।

यहां के मजदूरों के भीतर आक्रोश है, मजबूत एकता है और उनमें लड़ने का जज्बा भी मौजूद है और वे संघर्ष भी कर रहे हैं। उन्हें इलाके के मजदूरों का समर्थन भी मिलने लगा है। मगर संघर्ष को जीत की मंजिल तक पहुंचाने के लिए यही पर्याप्त नहीं हैं। एक तो यहां न कोई यूनियन है न नियमित श्रमिक हैं और प्रबन्धन की नजर में न ही उन्हें कारखाने का श्रमिक होने का कोई कानूनी अधिकार है। दूसरे उन्हें संघर्ष का कोई अनुभव भी नहीं है। तीसरे यहां लम्बे संघर्ष की सुसंगत योजना का अभाव है।

चौथे, इस दौर में इलाके के कई जुझारू आन्दोलन पराजित हुए हैं और देशव्यापी मजदूर आन्दोलन ठहराव का शिकार है। तथा मालिकों के तेवर आक्रामक हुए हैं। शासन-प्रशासन- श्रम विभाग- न्यायालय सभी खुलकर मालिकों के पक्ष में खड़े हो चुके हैं। पांचवे, इनके भीतर मजदूर पक्षीय राजनीतिक विचार व चेतना का अभाव है और सबसे बड़ी बात यह है कि अभी इलाकाई पैमाने पर जबर्दश्त आन्दोलन का कोई विस्फोट भी पैदा नहीं हुआ है।

उल्लेखनीय है कि कुछ वर्ष पूर्व यहां के मजदूरों को यूनियन बनाने के एक प्रयास में अपने नेतृत्वकारी कुछ साथियों की गद्दारी और मालिकों द्वारा स्थानीय गुण्डों और प्रशासन के सहमेल के कारण दमन का शिकार होना पड़ा था। उनकी पहली कोशिश नाकामयाब रही थी। वैसे भी छोटे पूंजीपतियों का रोल और ज्यादा निरंकुश और दमनकारी होता है। ऐसे में शीलचन्द्र के मजदूरों के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है।

विशेष सामग्री

(इक्कीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -7

पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियां ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में इक्कीसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

– सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

आंतरिक पार्टी जनवाद को विकसित करो और केन्द्रीकृत एकता कायम करो

पार्टी के भीतर जनवादी केन्द्रीयता लागू करने के लिए हमें जनवाद को पूरी तरह विकसित करना चाहिए, पार्टी के जनवादी जीवन को बेहतर बनाना चाहिए और नियमित रूप से आलोचना और आत्मालोचना करनी चाहिए। अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं "पार्टी के भीतर और बाहर, दोनों ही जगह हमें पूरी तरह से जनवाद को लागू करना चाहिए, यानी हमें ईमानदारी के साथ जनवादी केन्द्रीयता को लागू करना चाहिए।" बिना जनवाद के सच्ची केन्द्रीयता संभव ही नहीं है, क्योंकि जब लोगों के विचार भिन्न होंगे और कोई एकीकृत सोच नहीं होगी तो केन्द्रीयता की नींव रखना असंभव होगा।"

पार्टी में जनवाद को पूरी तरह से विकसित करने की कुंजी पार्टी संगठनों के नेतृत्व के हाथ में होती है। पार्टी के सभी सदस्य जो नेतृत्व की जिम्मेदारियां संभालते हैं उनकी शानदार जनवादी कार्यपद्धति होनी चाहिए, उन्हें अन्य पार्टी सदस्यों के जनवादी अधिकारों का सम्मान करना चाहिए और हरेक के लिए ऐसे हालात तैयार करने चाहिए कि वह पार्टी की कार्यदिशा, दिशा और राजनीतिक सिद्धांतों पर पकड़ बना सके, परिस्थितियों और सवालों को समझ सके और अपने विचारों को पूरी तरह अभिव्यक्त कर सके। इसका मतलब यह हुआ कि हर फैसला चाहे वह कितना ही छोटा हो जिन्हें ऊपरी निकाय लेते हैं उन्हें तेजी से नीचे के निकायों और साथ ही साथ सभी पार्टी सदस्यों तक पहुंचा दिया जाए। जब वे पार्टी सदस्यों की सामान्य सभा या उनके प्रतिनिधियों को अपने कामों की रिपोर्ट दें, तो नेतृत्वकारी साथियों को बस कार्यभार निर्धारित करके या अपने भाषण दूसरों को सुनाकर ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, बल्कि उन्हें पार्टी कार्यों पर विचार-विमर्श को दो लाइनों के संघर्ष के स्तर तक उठाना चाहिए, और तथ्यों के आधार पर विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने चाहिए। उन्हें सफलताओं पर जरूर जोर देना चाहिए, मगर साथ ही कमियों और गलतियों को भी पहचानना चाहिए, सख्ती से अपनी चीर-फाड़ करनी चाहिए, साहसपूर्वक आत्मालोचना करनी चाहिए और स्वैच्छिक तौर पर पार्टी सदस्यों के समूहों के नियंत्रण को स्वीकारना चाहिए और उनकी राय सुननी चाहिए। साथ ही उन्हें जनसमूहों को बोलने का अधिकार पूर्णतया देना ही चाहिए और उन्हें जनता की राय से डरने और उन्हें मुंह न खोलने देने के विश्वासघाती रवैये से संघर्ष करना चाहिए। उन्हें ईमानदारी से सभी रायें सुननी चाहिए- बहुमत की भी और अल्पमत की भी। सामान्य तौर पर, इस बात की ज्यादा संभावना है कि बहुमत की मान्यता सही हो, मगर यह भी संभव है कि सच अल्पमत के साथ खड़ा हो। उन्हें अल्पमत के लोगों को मुक्त रूप से अपने विचार अभिव्यक्त करने की इजाजत देनी चाहिए और फिर सचेतन तौर पर उनका मूल्यांकन करना चाहिए। जिस तरह समर्थन करने वाले विचारों को सुनना जरूरी है, उसी तरह विरोधी विचारों को सुनना भी जरूरी होता है। जिस तरह सही विचारों को स्वीकार करना जरूरी होता है उसी तरह श्रमसाध्य सैद्धांतिक और राजनीतिक काम करने के बाद, गलत विचारों को सही ढंग से सुलझाना भी जरूरी होता है। केवल इसी तरीके से पार्टी जनवाद में जान फूंकी जा सकती है, सभी पार्टी सदस्य स्वेच्छा से खुले तौर पर खुद को अभिव्यक्त करेंगे, जनवाद पर आधारित केन्द्रीयता और केन्द्रीकृत नेतृत्व के अंतर्गत जनवाद लागू करने के काबिल हो पाएंगे। केवल इसी रास्ते पार्टी की एकता को मजबूत किया जा सकता है पार्टी कार्य अच्छी तरह से हो सकता है और **'एक ऐसी राजनीतिक स्थिति तैयार की जा सकती है जिसमें केन्द्रीयता और जनवाद दोनों हों, अनुशासन और आजादी दोनों हों, इच्छा की एकता और व्यक्ति की दबावमुक्त मनस्थिति दोनों हों, और जीवन्तता।"**

पार्टी के जनवादी जीवन का विकास इसके सभी सदस्यों के प्रयासों पर भी निर्भर करता है। हर कम्युनिस्ट को क्रांतिकारी लक्ष्य की ओर एक सक्रिय और जिम्मेदार रुख रखना चाहिए और पार्टी के कामों से संबंधित महत्वपूर्ण मसलों में दिलचस्पी लेनी चाहिए। उसे हर महत्वपूर्ण राजनीतिक सवाल पर जो सही हैं उन्हें मानते हुए और जो लगता है उनका विरोध करते हुए, साहसपूर्वक अपनी राय जाहिर करनी चाहिए। सही विचारों पर अड़ना और गलत विचारों से लड़ना पार्टी के प्रति गैर जिम्मेदार होना नहीं है और एक कम्युनिस्ट की पार्टी भावना के विपरीत जाना नहीं है।

जनवादी केन्द्रीयता को सही ढंग से लागू करने के लिए हमें पार्टी की केन्द्रीकृत एकता को भी कायम रखना चाहिए। अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं: **"... कम्युनिस्ट पार्टी को सिर्फ जनवाद की ही जरूरत नहीं है बल्कि केन्द्रीकरण की और ज्यादा जरूरत है।"** (माओत्से तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-3, "पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो", पृ-44, अंग्रेजी संस्करण) हमारी पार्टी एक अगुआ संगठन है जो सर्वहारा वर्ग और क्रांतिकारी वर्गों का वर्ग शत्रुओं के विरुद्ध उनके संघर्ष में मार्गदर्शन करती है। एकजुट और केन्द्रीकृत हुए बगैर पार्टी के लिए शत्रु को हरा पाना असंभव है। हमें जनवाद की जरूरत है, मगर एक साधन के रूप में, साध्य के रूप में नहीं। जनवाद केन्द्रीयता को मजबूत करने में, पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को सुनिश्चित करने में सर्वहारा की तानाशाही को मजबूत करने में और उन्हें कमजोर न करने में मदद करता है। जब हम केन्द्रीकरण की बात करते हैं, तो सबसे पहले हमारा संकेत सही विचारों के केन्द्रीकरण की ओर होता है। सभी स्तरों पर पार्टी कमेटियों को मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओत्से-तुङ विचारधारा को अपना मार्गदर्शक मानते हुए, सही ढंग से केन्द्रीयता को लागू करना चाहिए। केवल इसी रास्ते वे सोच, नीति, योजना, निर्देश और कार्य में एकता को हासिल कर सकती हैं और इस प्रकार पार्टी द्वारा निर्धारित जुझारू कार्यभारों को पूरा करने में सभी पार्टी सदस्यों और जनता की अगुवाई कर सकती है।

(अगले अंग से नया अध्याय-पार्टी अनुशासन)

(पेज 1 से आगे)

पूंजीवाद का ढांचागत संकट अंतकालिक है

संकेन्द्रण हो रहा है और पूरी दुनिया की पूंजी कुछ हाथों में सिमटती जा रही है। अपने खेल में लगातार महारत हासिल करती जा रही बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपनी पूंजी का बड़ा हिस्सा विपणन (माल बिक्री के तरीकों) पर ज्यादा खर्च कर रही हैं। उनका मूल उद्देश्य अपने माल को खपाना और इसके लिए कृत्रिम बाजार पैदा करना है। इसके लिए वे विज्ञापन, ब्राण्ड नामों, ट्रेडमार्कों, विशिष्ट पैकिंग, स्टाइल और माडल में परिवर्तन वगैरह से उपभोक्ताओं को रिझाने-फंसाने का काम बखूबी कर रही हैं।

यह अनुत्पादक खर्च कितना बड़ा है, इसके लिए एक उदाहरण पर्याप्त है। वर्ष 1992 में अमेरिकी कारोबार ने अनुमानतः दस खरब डालर (वहां की सकल घरेलू उत्पाद का छठवां भाग) विपणन (बिक्री-प्रोत्साहन खर्च) पर खर्च किया।

यानी लोगों को मात्र यह प्रेरित करने में कि वे ज्यादा से ज्यादा मालों की खपत करें। विज्ञापन के मद में इसके अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा हिस्सा खर्च किया गया। उदाहरणार्थ, वर्ष 1993 में अमेरिका में विज्ञापन के मद में 140 अरब डालर खर्च किया गया जबकि वार्षिक बिक्री-प्रोत्साहन खर्च इसका तीन गुना था।

वैश्विक मुनाफाखोर, लूट की अपनी ऐसी तकनीकों द्वारा उपभोक्ताओं की जरूरतों को बड़ी कुशलता और चालाकी से बदलते हुए और अपने छोटे प्रतिस्पर्धियों को बाजार से बाहर खदेड़ते हुए अपने मुनाफों और वृद्धि दरों को बढ़ाने में 'सफलता' के कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूंजी के इन्हीं अनुत्पादक खेल से पूंजी का वैश्वीकरण हो रहा है और विश्व पूंजीवाद का ढांचागत संकट और भी गहराता जा रहा है। इस प्रकार आज पूंजी का संकेंद्रण एक अन्तर्राष्ट्रीय परिघटना बन चुकी है।

आज दुनिया के विशालतम 300 निगमों की 'प्रत्यक्ष विदेशी निवेश' (एफ. डी.आई.) के 70 फीसदी में भागीदारी है और विश्व पूंजी परिसम्पत्ति के 25 फीसदी हिस्से पर इनका कब्जा है। महज अमेरिकी अर्थव्यवस्था को देखें तो वहां पर कुल वित्तीय सम्पत्ति का 94 फीसदी ऊपर की 20 फीसदी आबादी के कब्जे में है, जबकि कुल वित्तीय सम्पत्ति का केवल 6 फीसदी हिस्सा नीचे के 80 फीसदी लोगों के पास है। धनकुबेरों के पक्ष में सम्पत्ति की इस बढ़ोत्तरी के मुख्यतंत्र वहां के विशालकाय निगम ही हैं।

अमेरिका के सबसे बड़े 200 मैन्युफैक्चरिंग कारपोरेशन समग्र मैन्युफैक्चरिंग परिसम्पत्तियों के 60 फीसदी से अधिक पर अपना कब्जा रखते हैं, जबकि सबसे बड़े 710 निगम (अमेरिकी मैन्युफैक्चरिंग कारपोरेशनों के एक फीसदी का चौथाई) पूरे 80 फीसदी मैन्युफैक्चरिंग परिसम्पत्तियों पर कब्जा जमाये हुये हैं विगत शताब्दी के अंतिम दशक के प्रारंभ में अमेरिकी अर्थव्यवस्था में चोटी के 600 निगमों ने कुल बिक्री आमदनी का 80 फीसदी से भी ज्यादा खुद समेट लिया।

बहुराष्ट्रीय निगमों का यह कुत्सित खेल जैसे-जैसे गति पकड़ता जा रहा है। वैसे-वैसे व्यापक मेहनतकश जनता की तबाही-बदहाली भी बढ़ती जा रही है। दूसरी तरफ साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का संकट भी उतरा ही गहरा होता जा रहा है। जाहिरा तौर पर वैश्विक लुटेरों के पास इससे निजात पाने का अब कोई भी विकल्प शेष नहीं है। यही कारण है कि पूंजीवादी चौधरियों की छटपटाहट लगातार बढ़ती जा रही है।

निश्चित रूप से पूंजीवाद का यह ढांचागत संकट अन्तकालिक मुनाफे की निरंकुश, निर्मम अंधी हवस तेजी से मौत की घाटी की ओर लिये जा रही है। कहने का मतलब कि पूंजीवादी तंत्र आज अपने ही बुने जाल में बुरी तरह से उलझ चुका है।

आज मानवता के रास्ते में यह एक ऐसा अवरोध है जिसका विनाश अवश्यंभावी है।

मजदूरों में एक अति लोकप्रिय रचना

मकड़ा और मक्खी

लेखक - विल्हेल्म लिब्कनेख़्त

विल्हेल्म लिब्कनेख़्त (1826-1900) जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक दल के संस्थापकों में से एक थे। वह जर्मनी के मजदूर वर्ग के ऐसे नेता थे जिनका सारा जीवन मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष और समाजवाद के लिए समर्पित था 'मकड़ा और मक्खी' लेख उनके एक पैम्पलेट का अंग्रेजी से हिन्दी में भावानुवाद है।

आप सभी उस तोंदियल, रोयेंदार, चिपचिपे शरीरवाले कीड़े से परिचित हैं जो यथा-सम्भव दिन के उजाले से दूर अपने उस घातक जाले को बुना करता है जिसमें कि कोई भूख से व्याकुल अदूरदर्शी, असावधान मक्खी फंस जाती है और समाप्त हो जाती है। यह भद्दा जानवर जिसकी आंखें गोल और चमकीली हैं तथा जिसके लम्बे पतले पैर सामने की ओर मुड़े होते हैं, जिससे शिकार पकड़ने और उसे घोंट कर मारने में उसे काफी आसानी होती है। यह दुष्ट, भद्दा जानवर ही मकड़ा है।

वह मौन, निश्चल अपनी मांद में पड़ा रहकर, अपने शिकार के जाल में फंसने की प्रतीक्षा करता है या फिर निर्बल मक्खी को फंसाने और बेरहमी के साथ जकड़ने के लिए घातक जाले के धागों को बुनता रहता है। यह घृणित जीवन अपने जाले में किसी तरह की कमी न रहने देने के लिए अपना अधिकाधिक समय व्यय करता है अपनी कला और परिश्रम का उपयोग वह जाले को बुनने में करता है। ताकि शिकार किसी भी हालत में उसके बंधन से मुक्त न होने पाये। पहले यह एक तार फेंकता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर अधिक से अधिक। यह आड़े-तिरछे तारों को खींचता है, हर एक तार को दूसरे तार से फंसाता है ताकि मृत्यु की यंत्रणा से पड़े हुए शिकार को छटपटाहट से जाला टूट न जाये, क्षतिग्रस्त न हो।

आखिर जाला तैयार हो जाता है, जाल बिछ जाता है, बच निकलने की कोई राह नहीं है। मकड़ा अपनी मांद में चला जाता है और किसी सीधी सादी मक्खी का इन्तजार करता है जो भूख से व्याकुल होकर भोजन की तलाश में जाले के पास पहुंची है।

अधिक इन्तजार नहीं करना पड़ता, मक्खी जल्दी ही आ जाती है। अपनी खोज में इधर उधर भटकते हुए बेचारी अचानक सामने फैले हुए तारों से टकराती है, उनमें बुरी तरह उलझ जाती है, वह जकड़न से छूटना चाहती है, पर हार जाती है।

जैसे ही मकड़ा अपने शिकार को फंसा हुआ देखता है, वैसे ही वह अपनी मांद से निकल आता है और रक्त पिपासु आकृति में अपने मुड़े हुए पंजों के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। वह भयानक जीव अच्छी तरह जानता है कि एक बार फंस जाने के बाद अभागा कीड़ा बचकर नहीं जा सकता। वह समीप आता है, अपनी उभरी हुई भाव शून्य आंखों से अपने शिकार को घूरता है और उसका लेखा जोखा लेता है। उसका शिकार भयभीत हो जाता है, अपने ऊपर मंडराते संकट को देखकर मक्खी कांपने लगती है। जकड़े हुए धागों से अपने को मुक्त करने के लिए वह प्रयास करती है। छुटकारा पाने की चाह में उसकी सारी शक्ति बेकार कोशिशों में खत्म हो जाती है।

अपने प्रयासों में विफल, निराश मक्खी को जाला और अधिक कसकर दबोचता है। मकड़ा और करीब आता है। मकड़े के जाले से छुटकारा पाने की हर कोशिश में मक्खी और अधिक मजबूत महीन धागों में उलझ जाती है, नये तारों फंस जाती है। अन्त में विरोध करने की सारी शक्ति खोकर थकान से चूर, हांफती हुई वह अपने शत्रु विजेता, डरावने मकड़े के चंगुल में फंसी उससे दया की आशा करती है।

तब यह भयानक जीव अपने रोंयेदार पैरों को फैलाता है और मक्खी को अपने जानेलवा चंगुल में कस लेता है। इसके बाद वह अपने कमजोर शिकार के भय से कांपते हुए शरीर को काटता है, चूसता है और निचोड़ता है एक बार, दो बार, तीन बार। वह तब तक घाव करता है जब तक उसकी खूनी प्यास बुझ नहीं जाती। तब वह मक्खी को रख छोड़ता है जो बिल्कुल मर नहीं गयी है। वह लौटकर आता है और फिर खून चूसता है। इस प्रकार वह तब तक आता जाता रहता है जब तक कि वह मक्खी का सारा रक्त तथा पौष्टिक रस चूस नहीं लेता और उस अभागी मक्खी को पूरी तरह से खोखला नहीं कर देता। कभी-कभी बेचारी मक्खी की मौत आने में काफी लम्बा समय लग जाता है।

लेकिन जब तक मक्खी के शरीर, उसकी मुर्दा सी देह में कुछ भी रक्त रहता है जिसे चूसा जा सके, तब तक उसे यह पिशाच अपनी आंख से ओझल नहीं होने देता। यह अपने शिकार का प्राण लेता है, अपनी शक्ति बढ़ाता है, इसका रक्त पीता है और इसे फेंक देता है। जब इसमें कुछ भी शेष नहीं रह जाता। तब बेचारी मक्खी, मरी हुई, चूसी हुई, सूखी तिनके से भी हल्की, जाले से बाहर फेंक दी जाती है। हवा का पहला झोंका आता है और उसे बहुत दूर उड़ा ले जाता है और इस तरह सब कुछ समाप्त हो जाता है।

मकड़ा मांद में सन्तुष्ट होकर लौट आता है। वह अपने से और जग से बहुत खुश है उसे प्रसन्नता इस बात की है कि दुनिया में अब भी शरीफ लोगों का गुजारा हो सकता है।

शहरों और गांवों के मजदूरों और मेहनतकशों! तुम्हीं मक्खी हो जिसे चूसा और कुचला जाता है। तुम्हें ही निगला जाता है और तुम्हारे खून पर ही अन्य लोग जीवित हैं। ऐ गुलाम लोगो! उत्पीड़ित जन-गणों और औद्योगिक मजदूरों! बुद्धिजीवियो! कांपती हुई युवा कुमारियों और अपने अधिकारों के लिए लड़ने में हिचकिचाने वाली कमजोर पद-दलित पीड़ित नारियो! सैनिकों, और जंगखोरों के भाग्यहीन शिकारो! तुम सब लोग जो गरीब और दुखी हो, तुम सबको तब उठाकर फेंक दिया जाता है जब तुमने चूसने के लिए कुछ नहीं रह जाता। तुम हो सब कुछ पैदा करते हो, तुम जो देश के दिल, दिमाग और जीवनशक्ति हो, और तुम सब जिन्हें अपने मालिक का आज्ञाकारी बनकर किसी कोने में चुपचाप एक दुखद मौत मरने के सिवा और कोई अधिकार नहीं प्राप्त है। जबकि तुम्हारा खून पसीना और मेहनत, चिन्तन और जीवन का इस्तेमाल ही इन्हें धनवान और शक्तिशाली बनाता है, ये हैं तुम्हारे मालिक उत्पीड़क और बेरहम, घिनौने मकड़े।

मकड़ा है मालिक, पूंजीपति, शोषक, सट्टेबाज, धनवान, भ्रष्टाचारी, धर्मगुरू, महन्त-हर तरह के परजीवी, हरामखोर, निरंकुश जिनके दबाव में हम तड़पते हैं, कष्ट झेलते हैं, जन विरोधी कानून बनाने वाले जो हमें परेशान करते हैं, दुष्ट अत्याचारी जो हमें गुलाम बनाते हैं वे सभी मकड़े हैं जो दूसरों के ऊपर जीवित रहते हैं, जो हमें पैरों से रौंदते हैं, जो हमारी तकलीफों की खिल्ली उड़ाते हैं और हमारे बेकार होते प्रयासों को देखकर मुस्कराते हैं।

मक्खी गरीब मजदूर और मेहनतकश है जिसे मालिक द्वारा बनाये गये बेरहम कानूनों के आगे झुकना पड़ता है, क्योंकि बेचारा मजदूर साधनहीन होता है और उसे अपने परिवार के लिए रोटी की व्यवस्था भी करनी पड़ती है, बड़े उद्योगों का मालिक मकड़ा है, जो हर मजदूर से प्रतिदिन हजारों रुपये का मुनाफा कमाता है और मजदूर को 12 से 14 घंटे प्रतिदिन काम के एवज में 40 या 50 रुपये पेट पालने के लिए देता है।

मक्खी खान में काम करने वाला मजदूर है, जो अपना जीवन खान के दम घोंटने वाले वातावरण में काम करके मिटा देता है। जो धरती के गर्भ से खनिज निकालता तो है पर उसे अपने उपयोग में नहीं ला सकता। मकड़ा श्रीमान शेयर-होल्डर है जो अपने शेयर की कीमत दुगनी तिगुनी होते देखते हैं पर जो मजदूरों से उनकी मेहनत का फल छीनते हैं और जब भी मेहनत करने वाले जरा भी मजदूरी बढ़ाने की मांग करते हैं तो वे विद्रोहियों को गोली से उड़ा देने के लिए सेना बुला लेते हैं।

वह बालक मक्खी है जिसे छोटी आयु में ही कारखाने, वर्कशाप तथा घरों में जीवित रहने के लिए कठोर परिश्रम और गुलामी करनी पड़ती है। गरीब मां बाप मकड़े नहीं हैं जो परिस्थितियोंवश अपने बच्चों की बलि देने हेतु लाचार होते हैं। मकड़ा है आज के समाज की बुरी दशा जो उन्हें अपनी स्वाभाविक भावनाओं को भूल जाने और अपने परिवार को खुद ही नष्ट कर देने के लिए मजबूर कर देती है। (पेज 11 पर जारी)

बेचारों का हिन्दू राष्ट्र

● विष्णु नागर

उन्होंने मारे
और-और मारे
और-और-और मारे लोग
उन्होंने मारने में पचास साल लगा दिए
फिर भी बना नहीं, हां जी बन ही नहीं सका, बेचारों का हिन्दू राष्ट्र।

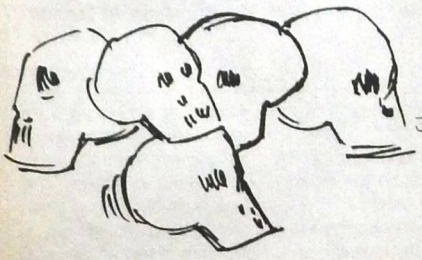

उन्होंने रथ चलाये और घर जलाये
उन्होंने मस्जिदें तोड़ी और मंदिर बनाये
उन्होंने सरकारें तोड़ी और सरकारें बनायी
उन्होंने साधु वेश धरा,
उन्होंने राष्ट्रवाद के प्रदर्शन की तमाम बाजियां जीत ली
उन्होंने नैतिकता का शंख फूंका
उन्होंने मन्दिरों में महाआरतियां की
उन्होंने हत्याकांडों को शौर्य दिवस के रूप में मनाया,
उन्होंने झूठ के एक से एक शानदार महल खड़े किये
उन्होंने भावनाओं की गंगाए-यमुनाएं और यहां तक कि सरस्वतियां तक बहाकर दिखा दी
उन्होंने धोखे की सभी प्रतियोगिताएं जीत ली
मगर बना नहीं, हां जी बन ही नहीं सका, बेचारों का हिन्दू राष्ट्र।

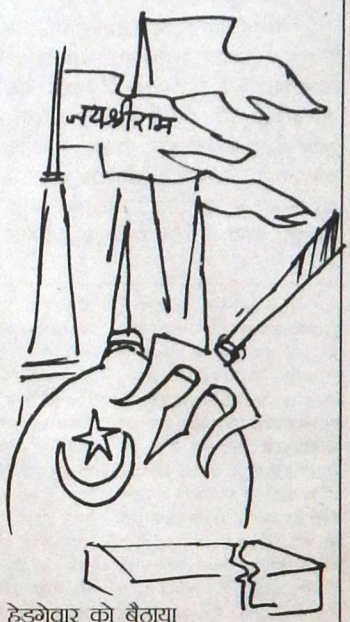

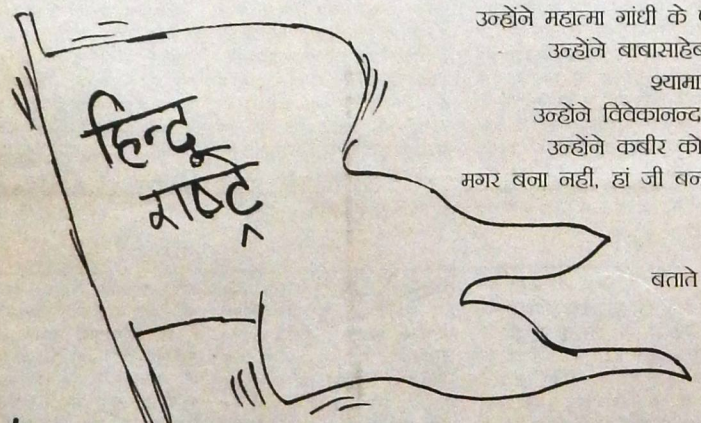

उन्होंने भगत सिंह की बगल में हेडगेवार को बैठाया
उन्होंने महात्मा गांधी के पास गोलवलकर के लिए जगह बना दी
उन्होंने बाबासाहेब अंबेडकर के पास गावतकिया लगाकर
श्यामाप्रसाद मुखर्जी के लिए स्थान बना दिया
उन्होंने विवेकानन्द को झपटा, सुभाषचन्द्र बोस को लपका
उन्होंने कबीर को पटका, नेहरू को दिया करारा झटका,
मगर बना नहीं, हां जी बन ही नहीं सका, बेचारों का हिन्दू राष्ट्र।

बताते हैं अब वे हिन्दू राष्ट्र बनाने का ग्लोबल टेंडर निकालेंगे
अटलबिहारी भी उनसे सहमत हैं कि हां,
ये हुई न बात
ठीक इसी तरह बनेगा हमारा हिन्दू राष्ट्र।

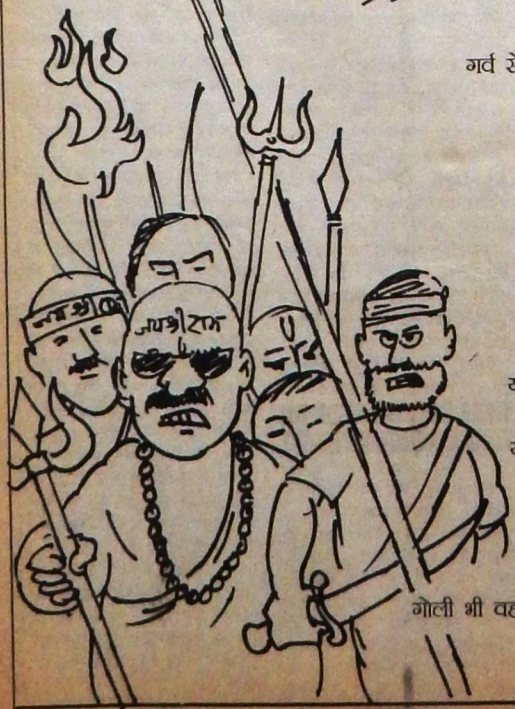

एक प्रधानमंत्री था जिसकी शक्ल पर
गर्व से कुछ कहने का लोकतांत्रिक असमंजस था।
एक राष्ट्रपति था जिसके पास
देश के सबसे बड़े आवास में रहने
के अलावा अन्य कोई अधिकार नहीं था,
जबकि अधिकारों के लथपथ कैबिनेट।
जनाधार के लिए जनतंत्र में सबको जनता
न मानने की नंगई थी।

एक जो ईश्वर था बेचारा बेघर था और
राजनीतिक पुनर्वास के षडयंत्र का शिकार।
यह खून और आग का फासिस्ट हॉलीवुड था
यह बल का आनंद था
यह प्रातिनिधिक संसदीयता का प्रमोदवाद था।
एक शख्श इसलिए जलाया गया
कि उसका एक नाम था और एक आदमी
का चेहरा इतना आदमी की तरह था कि
पहचान के लिए उसका पैंट उतारा गया और
गोली भी वहीं मारी गयी जहां शिनाख्तनामे की चोट थी।
जय श्रीराम की खौफनाक गूंज के बीच
हे राम की परती का यह बियाबान था।

क्रान्तिकारी दुस्साहसिकता

• व्ला.इ.लेनिन

1917 की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के नेता और विश्व सर्वहारा के शिक्षक व्लादिमीर इल्यीच लेनिन ने 1902 में ऊपर लिखे गये शीर्षक से एक महत्वपूर्ण पर्चा लिखा था। यह पर्चा रूस में उस समय सक्रिय *'समाजवादी क्रान्तिकारी' नामक समूह द्वारा आतंकवादी कार्रवाइयों का समर्थन करने वाले एक पर्चे के जवाब में लिखा था। इतिहास का निर्माण जनता करती है, जनता के प्रति सदभावना रखने वाले चन्द बहादुर लोगों की दुस्साहिक कार्रवाइयां नहीं। देश में सर्वहारा क्रान्ति की कोशिशों में जुटे लोगों को यह बात गांठ बांध लेनी चाहिए। जनसमुदाय को क्रान्ति के लिए तैयार करने का काम बेहद कठिन काम है।* यह काम क्रान्तिकारियों का वही समूह कर सकता है जो क्रान्तिकारी जनदिशा पर अमल करते हुए बिना धीरज खोये जनता को जगाने, गोलबन्द व संगठित करने के इस कठिन काम से कभी न मुंह मोड़े। लेकिन देश के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के कुछ हिस्सों में आज भी क्रान्ति के 'शार्टकट' अख्तियार करने की नुकसानदेह रुझान बनी हुई है। लेनिन के इस महत्वपूर्ण पर्चे का यह एक छोटा अंश इसी रुझान के खिलाफ आगाह करता है और धैर्यपूर्वक क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग को संगठित करने की शिक्षा देता है।

– सम्पादक

...सामाजिक-जनवादी* दुस्साहसिकता से सदैव सावधान करते रहेंगे और उन भ्रमों का बेरहमी से पर्दाफाश करते रहेंगे, जिनका अनिवार्यतः अंत पूरी मायूसी होता है। हमें यह स्मरण रखना होगा कि कोई भी क्रांतिकारी पार्टी तभी अपने नाम को सार्थक करती है, जब वह क्रांतिकारी वर्ग के आंदोलन का करनी में नेतृत्व करती है। हमें यह स्मरण रखना होगा कि कोई भी जन आंदोलन अनंत विविधतापूर्ण रूप धारण करता रहता है, निरंतर नये रूप विकसित करता रहता है तथा पुराने रूपों का परित्याग करता जाता है और पुराने तथा नये रूपों को संशोधित या उनके नये संयोजन स्थापित करता जाता है। हमारा कर्तव्य है कि हम संघर्ष के साधन तथा विधि या तैयार करने की इस प्रक्रिया में सक्रियतापूर्वक भाग लें। जब छात्रों का आंदोलन तीक्ष्ण हो गया, तो हमने छात्रों की सहायता के लिए आगे बढ़ने के लिए मजदूरों का आह्वान किया। ('ईस्क्रा', अंक 2), हमने प्रदर्शनों के रूपों की भविष्यवाणी करने का जिम्मा अपने ऊपर नहीं लिया, यह वचन नहीं दिया कि उनके परिणामस्वरूप तत्काल ताकत का स्थानांतरण होगा, मस्तिष्क आलोकित होगा अथवा किसी खास ढंग से पकड़ में आने से बचा जा सकेगा। जब प्रदर्शन सुदृढ़ हो गये, तो हमने उनके संगठन के लिए तथा जनसाधारण को हथियारबंद करने के लिए आह्वान करना शुरू कर दिया और जनविप्लव की तैयारी का कार्यभार पेश किया। हिंसा तथा आतंक से सिद्धान्ततः जरा भी इनकार किये बिना हमने हिंसा के ऐसे रूपों की तैयारी के लिए काम की मांग की, जिनसे जनसाधारण की सीधी शिरकत हासिल करने की अपेक्षा की गयी तथा जो इस शिरकत को गारंटी करते थे। इस कार्यभार में कठिनाइयों की ओर से हम आंखे नहीं मूंदते, बल्कि हम इसके लिए दृढ़तापूर्वक तथा अडिगतापूर्वक काम करते रहेंगे, इन आपत्तियों से विचलित हुए बिना कि यह 'अस्पष्ट, दूर भविष्य' की चीज है। जी हां, सज्जनों, हम आंदोलन के भविष्य के रूपों के पक्ष में भी हैं, केवल अतीत के रूपों के ही पक्ष में ही नहीं। भविष्य जो वचन देता है, हम उस पर लंबे और परिश्रमसाध्य काम को तरजीह देते हैं, बजाय उस चीज की 'आसान' पुनरावृत्ति के जिसकी अतीत पहले ही भर्त्सना कर चुका है। हम उन लोगों को हमेशा बेनकाब करते रहेंगे, जो शब्दों में तो हमेशा घिसे-पिटे जड़सूत्रों के विरुद्ध लड़ते हैं, लेकिन अमल में केवल ताकत के स्थानांतरण, बड़े और छोटे काम के बीच अंतर के सबसे जर्जर और हानिप्रद सिद्धान्त और निस्संदेह द्वंद्वयुद्ध के सिद्धांत जैसी घिसी-पिटी बातों से चिपके रहते हैं। 'ठीक जिस तरह गुजरे जमाने में जनता की लड़ाइयां उसके नेताओं और द्वंद्वयुद्ध में तय की जाती थीं, उसी तरह अब आतंकवादी राजतंत्र से द्वंद्वयुद्ध में रूस की आजादी जीतेंगे," 3 अप्रैल का परचा* इस तरह खत्म होता है। ऐसे वाक्यों का मात्र पुनर्मुद्रण ही खंडन करने के लिए पर्याप्त है।

जो कोई सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के साथ संबंध रखते हुए अपना क्रांतिकारी कार्य करता है, वह भली भांति जानता, देखता और अनुभव करता है कि सर्वहारा की (और उसका समर्थन करने में सक्षम जनता की श्रेणियों की) कितनी ढेर सारी तात्कालिक और प्रत्यक्ष मांगें अपूर्ण पड़ी हैं। वह जानता है कि अनेकानेक स्थानों में, पूरे के पूरे विशाल क्षेत्रों में मजदूर जनता संघर्ष के मैदान में कूदने के लिए अक्षरशः छटपटा रही है और साहित्य तथा नेतृत्व की कमी, क्रांतिकारी संगठनों के पास शक्तियों तथा साधनों के अभाव के कारण उनका उत्साह बेकार जा रहा है। और हम अपने को पाते हैं और हम देखते हैं कि हम अपने को पाते हैं- उसी बदनाम दुश्चक्र में, जो एक लंबे अर्से से रूसी क्रांति के लिए अभिशाप बना हुआ है। एक ओर, अपर्याप्त रूप से प्रबुद्ध तथा असंगठित भीड़ का क्रान्तिकारी उत्साह बेकार जा रहा है। दूसरी ओर, 'पकड़ में न आने वाले व्यक्तियों' द्वारा, जो जनसाधारण के साथ कतारबद्ध होकर तथा कंधे से कंधा मिलाकर चलने की संभावना में विश्वास खोते जा रहे हैं, दागी जा रही गोलियां भी बेकार जा रही है। परन्तु हालात को अब भी ठीक किया जा सकता है, साथियो! किसी वास्तविक ध्येय में आस्था खो देना एक विरल अपवाद है, कोई नियम नहीं। आतंकवादी कार्रवाई करने का जोश क्षणभंगुर मनोभाव है। इसलिए सामाजिक जनवादी अपनी कतारों को एकजुट करें, और हम क्रांतिकारियों के संघर्षशील संगठन तथा रूसी सर्वहारा के जनशौर्य को एक समष्टि में सूत्रबद्ध कर देंगे।

'ईस्क्रा', अंक 23 और 24,
1 अगस्त और 1 सितंबर, 1902

* **सामाजिक जनवादी**- दूसरे इण्टरनेशनल में काउत्सकी और उसकी मण्डली की गद्दारियों के पहले क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन के सभी प्रतिनिधियों को सामाजिक जनवादी कहा जाता था। पर उसके बाद से मजदूर वर्ग के गद्दारों को सामाजिक जनवादी कहा जाने लगा।

** **समाजवादी क्रान्तिकारियों का पर्चा**

(पेज 1 से आगे)

गुजरात प्रयोग को देशभर में फैलाने की घोषणा

जब कोई कम्युनिस्ट पार्टी या संगठन जनसंघर्ष का बीहड़ रास्ता छोड़कर संसदीय राजनीति का सुगम सुविधासम्पन्न मार्ग अपना लेता है तो वह समूह किस तरह गौदड़ों का झुण्ड बन जाता है। यही हाल आजकल सी.पी.आई-सी.पी.आई. (एम.) का है। ये सामाजिक जनवादी (यानी) संसदमार्गी कम्युनिस्ट यानी कथनी में कम्युनिस्ट व करनी में (बुर्जुआ) आज गौदड़ों के ऐसे ही झुण्ड में बदल चुके हैं। साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ इनकी चीखपुकार गौदड़ों की हुआं-हुआं से अधिक कुछ नहीं है। ये इतने कायर हो चुके हैं कि साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ जमीनी मोर्चेबन्दी खड़ी करने के लिए मजदूरों की झुग्गी-झोंपड़ियों बस्तियों में जाकर उन्हें गोलबन्द और संगठित करने का कठिन काम हाथ में लेने के बारे में सोच भी नहीं सकते। उनकी आत्माएं इतनी पराजित हो चुकी हैं, इच्छा शक्ति इतनी कमजोर हो चुकी है कि कांग्रेसी पुछल्ला बनने या मुलायम सिंह यादव के साथ कांग्रेसी टाका भिड़ाने के अलावे और कोई राह इन्हें सूझती ही नहीं है। इतिहास गवाह है कि ऐसे सामाजिक जनवादियों की कायराना करतूतों ने बार-बार फासीवादी ताकतों को ही मजबूत बनाया है।

सेकुलर बुद्धिजीवियों को निठल्ली नसीहतें और जिम्मेदारियों से मुंह चुराना

साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के लगातार बढ़ते जा रहे हौसले और अधिकाधिक बढ़ती जा रही उनकी आक्रामकता से बुरी तरह डरे हुए सेकुलर बुद्धिजीवी भद्रजनों को संघ परिवार के गुजरात प्रयोग की सफलता से यह बात तो अच्छी तरह समझ में आ गयी है कि संसदमार्गी कम्युनिस्टों की मौजूदा रीति नीति से साम्प्रदायिक फासीवाद का बाल भी बांका नहीं होने वाला है। इसलिए आजकल ये डरी हुई आत्माएं जो कुछ लिख बोल रही है। उसमें नयी 'दीर्घकालिक' रणनीति अख्तियार करने और जमीनी कार्रवाइयां करने की आवाजें काफी मुखर होकर सामने आ रही है। 'कम्युनिस्ट पार्टियों को अपने अन्दर झांकना चाहिए, 'कांग्रेस का पुछल्ला बनने से काम नहीं चलेगा,' 'जमीनी प्रतिरोध संगठित करना होगा' आदि-आदि भली-भली नसीहतें ये भले लोग 'कम्युनिस्ट' पार्टियों को दे रहे हैं। लेकिन इतनी अच्छी-अच्छी नसीहतें देने वाले ये धर्मभीरु बस इतनी सी बात नहीं समझ पा रहे हैं कि नसीहतें उसे दी जाती हैं जो उन्हें लागू करने का माद्दा रखता हो। इससे यह जाहिर है कि अभी भरम पूरी तरह टूटा नहीं है। संसदमार्गी कम्युनिस्टों से उम्मीदें पूरी तरह टूटी नहीं है। कहने की जरूरत नहीं कि बेबुनियाद उम्मीदें नाउम्मीदी की और गहरी खाई में ठेलती जाती हैं। दूसरे, नसीहतें देने का नैतिक हक उसे ही हासिल होता है जो अमल की पहल कदमी अपने हाथों में लेकर नजीर कायम करे। ये वामपंथी सेकुलर भद्रजन जमीनी कार्रवाइयों की पहलकदमी खुद अपने हाथ में क्यों नहीं लेते? ये क्यों ऐसा

नहीं करते कि चाणक्य की तरह चुटिया बांधकर कुछ दिनों के लिए मण्डीहाउस, काफी हाउस, इण्डिया हैबिटेट सेण्टर और मित्रों के ड्राइंगरूमों में देर रात तक चलने वाली 'सरस' गोष्ठियों का मोह त्यागकर राजधानी के इर्दगिर्द बसी झुग्गियों, मजदूरों की बस्तियों में जाकर साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी, जनसांस्कृतिक अभियान संगठित करें? अन्धेरे की ताकतों के खतरों से आगाह करते हुए मेहनतकशों के बीच जाकर कविताएं, कहानियां सुनाना, नाटक करना, गीत गाना, पर्चे बांटना, यह सब क्या संस्कृति के मोर्चे के सिपाहियों का काम नहीं है? क्या इन कामों को राजनीतिक पार्टियों, या उनके जनसंगठनों के भरोसे छोड़कर निठल्ले उपदेशकों की कुर्सी पर बैठकर आह- कराह भरना ही जनपक्षधरता का सबूत है? क्या वामपंथी, प्रगतिशील सेकुलर बुद्धिजीवियों को खुद ही अपने अन्दर झांककर नहीं देखना चाहिए? क्या चिकड़ी चमड़ी वाली सुविधापरस्त प्रगतिशीलता बघारते हुए आपकी आत्माएं कभी खुदआपको नहीं धिक्कारतीं? बेहतर हो कि राजनीतिक सांस्कृतिक सलाहकार और नैतिक सदुपदेशक की गद्दी छोड़कर सीधे मैदान में आप उतर पड़ें। फिर देखिये एक नया समां बंधने लगेगा। आपकी शुरुआती सक्रियताओं की आंच से ही बर्फ पिघलती नजर आयेगी।

मेहनतकशों की जमीनी मोर्चेबन्दी ही एकमात्र रास्ता

नरेन्द्र मोदी की दुबारा ताजपोशी के बाद जो खतरनाक सियासी माहौल बन रहा है वह आने वाले और भी खतरनाक दिनों की आहट है। गुजरात चुनाव नतीजे ने पहले भी उजागर हो चुके इस सच को ही एक बार फिर उजागर किया है कि साम्प्रदायिक फासीवाद की मानवद्रोही ताकतों को पूंजीवाद जनवाद की चौहद्दी के भीतर, उसके खेल के नियमों (चुनाव, अदालतों आदि) पर भरोसा रखते हुए नेस्तनाबूद नहीं किया जा सकता। इतिहास गवाह है कि फासीवादी ताकतें अक्सर पूंजीवादी जनतंत्र के खेल के नियमों का पालन करते हुए ही सत्ता पर पहुंची हैं। मोदी की ताजपोशी भी इसी का एक और उदाहरण है।

इन काली ताकतों से निपटने का रास्ता भी हमें इतिहास ही सुझाता है। वह रास्ता वही है जिसे सेकुलर भद्रजन ठीक ही सुझा रहे हैं। मेहनतकश अवाम को जगाना, गोलबन्द करना, संगठित करना! मेहनतकशों आबादी के बीचसच्ची वर्गीय एकजुटता कायम करने के लिए उसकी जिन्दगी से जुड़े बुनियादी मुद्दों को उभारना उनकी मोर्चेबन्दी की धुरी होनी चाहिए। इस धुरी के इर्द गिर्द उनके बीच साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी प्रचार प्रसार को इस तरह संगठित करना होगा कि उनके दिलों में यह बात जड़ जमाती चली जाये कि साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतें विश्व पूंजीवाद के संकटों की कोख से पैदा हुई है। ये वित्तीय पूंजी की जारज औलदें हैं। अगर इन्हें हमेशा हमेशा के लिए दफन करना है तो देशी विदेशी पूंजी की लूट के राज को खत्म करना होगा। बेशक यह एक लम्बी लड़ाई है।

लेकिन कोई भी दूसरा 'शार्टकट या' पूंजीवादी जनतंत्र के खेल के नियमों के बारे में कोई भी भ्रम आत्मघाती होगा। गुजरात चुनाव नतीजों का यह एक अहम बुनियादी सबक है।

जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

बीसवीं सदी के माथे पर चमकता लाल निशान माओ त्से - तुड.

विद्रोही युवा हृदयों पर अमिट अक्षरों से अंकित क्रान्ति का स्मृतिचिन्ह

सत्यव्रत

माओ त्से-तुड. सिर्फ चीन के लंबे क्रान्तिकारी संघर्ष के बाद लोक गणराज्य के संस्थापक और समाजवाद के निर्माता ही नहीं थे, मार्क्स और लेनिन के बाद वे सर्वहारा क्रान्ति के सबसे बड़े सिद्धान्तकार और हमारे समय पर अमिट छाप छोड़ने वाले सबसे बड़े क्रान्तिकारी थे।

चीन की जनवादी क्रान्ति के मार्ग को न केवल कोरिया, वियतनाम, कंबोडिया जैसे देशों के सर्वहारा क्रान्तिकारियों ने अपनाकर सफल क्रांतियां कीं बल्कि गिनी बिसाऊ, अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, घाना, केन्या, जिम्बाब्वे आदि अफ्रीकी देशों और लातिन अमेरिकी देशों के क्रान्तिकारियों ने भी अपने-अपने देश के राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में चीनी क्रान्ति के दीर्घकालिक लोकयुद्ध के मार्ग को ही अपनाया और महत्वपूर्ण जीतें हासिल कीं। तीसरी दुनिया के सभी देशों के सर्वहारा क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय मुक्ति योद्धाओं ने भी माओ के महान योगदानों को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है जिन्होंने 1917 की अक्टूबर क्रान्ति के बाद उसकी अगली कड़ी के रूप में 1949 की चीनी क्रान्ति की सर्जना करके पूरी तीसरी दुनिया को साम्राज्यवाद और सामंतवाद से वास्तविक और सम्पूर्ण मुक्ति के लिए नई जनवादी क्रान्ति का मार्ग दिखाया।

माओ त्से-तुड. ने चीन में रूस से अलग समाजवाद के निर्माण की नई राह चुनी और उद्योगों के साथ ही कृषि के समाजवादी विकास पर तथा गांवों और शहरों का अंतर मिटाने पर भी विशेष ध्यान दिया। आम जन की सर्जनात्मकता और पहलकदमी के दम पर बिना किसी बाहरी मदद के साम्राज्यवादी घेरेबंदी के बीच उन्होंने अकाल, भुखमरी और अफीमचियों के देश चीन में विज्ञान और तकनोलाजी के विकास के नये कीर्तिमान स्थापित कर दिये, शिक्षा और स्वास्थ्य को समान रूप से सर्वसुलभ बना दिया, उद्योगों के निजी स्वामित्व को समाप्त करके उन्हें सर्वहारा राज्य के स्वामित्व में सौंप दिया और कृषि के क्षेत्र में कम्यूनों की स्थापना की। इस अभूतपूर्व सामाजिक प्रगति से, चकित-विस्मित पश्चिमी अध्येताओं तक ने चीन की सामाजिक-आर्थिक प्रगति और समतामूलक सामाजिक ढांचे पर सैकड़ों पुस्तकें लिखीं।

स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में जुब खुश्चेव के नेतृत्व में एक नये किस्म का पूंजीपति वर्ग सत्तासीन हो गया तो उसके नकली कम्युनिज्म के खिलाफ संघर्ष चलाते हुए माओ ने मार्क्सवाद को और आगे विकसित किया। पहली बार माओ ने रूस और चीन के अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि समाजवाद के भीतर से पैदा होने वाले पूंजीवादी तत्व किस प्रकार मजबूत होकर सत्ता पर कब्जा कर लेते हैं। उन्होंने इन तत्वों के पैदा होने के आधारों को नष्ट करने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और चीन में 1966 से 1976 तक इसे सामाजिक प्रयोग में भी उतारा। यह आज माओ त्से-तुड. का महानतम सैद्धान्तिक अवदान माना जाता है।

1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में भी देड. सियाओ-पिड. के नेतृत्व में पूंजीवादी पथगामी सत्ता पर काबिज होने में कामयाब हो गये, क्योंकि पिछड़े हुए चीनी समाज के छोटी-छोटी निजी मिलकियतों वाले ढांचे में समाजवाद आने के बाद भी पूंजीवाद का मजबूत आधार और बीज मौजूद थे। लेकिन आज चीन के नये पूंजीवादी सत्ताधारी 20 वर्षों तक भी चैन की सांस नहीं ले सके हैं। माओ की विरासत को लेकर चलने वाले लोग आज भी वहां मौजूद हैं और संघर्षरत हैं। यही नहीं, रूस और पूर्वी यूरोप के देशों में भी समाजवाद के लिए नये सिरे से संघर्ष शुरू हो रहा है।

लातिन अमेरिका के पेरू, कोलम्बिया, चिली से लेकर तुर्की, ईरान, फिलीपीन्स, बांग्लादेश, नेपाल और भारत तक में माओ त्से-तुड. की क्रांतिकारी विचारधारा में आस्था रखने वाले अनगिनत छोटे-बड़े क्रान्तिकारी संगठन मौजूद हैं। आर्थिक नवउपनिवेशवाद के दौर की नई क्रान्तियों का नेतृत्वकारी केन्द्र इन्हीं के बीच से उभरेगा, इतिहास का यही संकेत है।

पूंजीवाद की मौजूदा जीत अंतिम नहीं है। दास प्रथा और सामंतवाद की ही तरह पूंजीवाद भी अमर-अनश्वर नहीं है। इस अन्यायपूर्ण सामाजिक ढांचे को भी अपने बलिष्ठ हाथों में माओ और भगतसिंह के वारिस, आम मेहनतकश अवाम के युवा सपूत एक न एक दिन अवश्य तोड़ डालेंगे। आज के विश्व पूंजीवाद के असाध्य संकट और दुनिया के कोने-कोने से एक बार फिर फूट पड़ने वाले जन असंतोष के विस्फोट इसी का पूर्व संकेत दे रहे हैं। इतिहास में क्रान्तियों के पहले संस्करण पहले भी कई बार असफल हो चुके हैं। उदीयमान वर्ग ह्रासमान वर्ग पर अंतिम जीत हासिल करने से पहले प्रायः एकाधिक बार पराजित होता रहा है। पर जैसाकि माओ त्से-तुड. ने बार बार जोर देकर कहा था, सर्वहारा क्रान्तियों की शुरुआती पराजयों के बावजूद, अंततोगत्वा साम्राज्यवाद और पूंजीवाद को पराजित होना ही है क्योंकि यही इतिहास का नियम है।

आज से 40 वर्षों पहले 1962 में माओ त्स- तुड. ने भविष्य के बारे में जो आंकलन प्रस्तुत किया था, ऐतिहासिक रुप से वह आज भी सही है: '' जब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी। यह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो अपनी विशेषताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायनों में भिन्न होंगे।''

शेष पेज 8 से आगे

मकड़ा और मक्खी

मक्खी जनता की वह सुशील कन्या है, जो ईमानदारी से अपनी जीविका कमाना चाहती है, लेकिन उसे तब तक काम नहीं मिलता जबतक वह अपने मालिक या फैक्ट्री मैनेजर की कुत्सित इच्छाओं के आगे अपने को समर्पित नहीं कर देती जो उसका उपभोग करता है और तब कलंक से बचने के लिए जो कभी-कभी बच्चे के बोझ के साथ होता है उसे हृदयहीनता तथा निर्ममता के साथ नौकरी से निकाल बाहर करता है।

मकड़ा बड़े घर का घमण्डी छैला है, निठल्ला और आवारा जो अनेक भोली-भाली नव-युवतियों को फुसलाता है और अपनी तड़क-भड़क से फंसाता है, बेइज्जत करता है और कीचड़ में घसीटता है। जो अधिक से अधिक औरतों की इज्जत बर्बाद करना ही अपना सम्मान समझता है।

कठिन परिश्रम पर खेत जीतने वालो! तुम मक्खी हो। तुम भूस्वामियों के लिए जमीन जोतते हो, अनाज बोते हो, पर काट नहीं सकते, फल उगाते हो पर स्वाद नहीं चख सकते। मकड़े देश के वे महानुभाव हैं जो गरीब किसानों, मेहनतकशों, दैनिक मजदूरों को बिना एक क्षण आराम लिए काम करने को विवश करते हैं, ताकि वे अपना जीवन विलासिता और शान शौकत के साथ बिता सकें। जबकि वे लगान की दर प्रत्येक वर्ष बढ़ाते जाते हैं और ईमानदारी के साथ किये गये परिश्रम की कीमत बल पूर्वक घटाते जाते हैं।

हम सब गरीब और सीधे-सादे लोग मक्खी हैं, जो युगों से बलिदान की वेदी की सीढ़ियों पर कांपते रहे हैं, हम पुरोहितों के अभिशाप से भयभीत रहे हैं, हम-जो आपस में झगड़ते आये हैं, एक-दूसरे को दबाते आये हैं, हम-जो जालिमों को अन्याय द्वारा प्राप्त फल का आनन्द लेने देते रहे हैं, क्योंकि हम लोगों की बुद्धि धार्मिक उपदेशों के प्रभाव से विवेकहीन हो चुकी है। मकड़े हैं काले लबादे पहने धूर्त और लोलुप आंखों वाले पादरी, जो विश्वास करने वाले लोगों के भोले दिमागों में गर्त की ओर ले जाने वाली शिक्षाएं भरते हैं, उनमें आज्ञाकारी तथा सेवक बने रहने की भावना का पोषण करते हैं, जो आत्मा को विषैला बनाते हैं और सारे देश को बर्बाद कर देते हैं। जैसाकि पोलैण्ड में हुआ।

थोड़े में वे सारे लोग मक्खी बताये गये हैं जो दलित हैं शोषित हैं, सताये हुए हैं जबकि मकड़ा नीच सट्टेबाज, निरंकुश तानाशाह या जिसे हम किसी भी नाम से पुकारें, हर घृणा करने योग्य वस्तु की तरफ इशारा है।

-कभी यह मकड़ा बड़े-बड़े भवनों, सामन्ती राजमहलों और जागीरों में अपना जाला बुनता था। अब यह बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों तथा वर्तमान समय के धनी इलाकों को अपने लिए चुनना पसन्द करता है। मुख्यतः आप इन्हें बड़े शहरों में पाते हैं, परन्तु वह छोटे शहरों और गांवों में भी निवास करता है। वह प्रत्येक स्थान पर रहता है जहां शोषण पनपता है, जहां मेहनतकश, निर्धन सर्वहारा, छोटा कामगार,

दैनिक मजदूर, छोटा किसान, उधार के बोझ से दबे इन थैलीशाहों के असीम लोभ और निष्ठुरता के शिकार रहते हैं।

जहां कहीं भी हो शहर या गांव में प्रत्येक स्थान पर हम इन बेचारे कीड़ों को अपने शत्रुओं के जाल में फंसा पाते हैं, निकलने की बेकार कोशिशों में लगे हुए। हम देखते हैं कि किस प्रकार वे खोखले होते हैं, मंद पड़ते हैं और मर जाते हैं।

सदियों से निर्बल भयभीत मक्खी और और रक्तलोलुप बेरहम मकड़े के झगड़ों में कितनी दुखद घटनाएं घट चुकी हैं। यह दुख, पीड़ा तथा क्लेश का रक्त रंजित, इतिहास है। इसे फिर क्यों दोहराया जाये? जो बीत गया, वह मर चुका है, हम आज और अपने वाले कल की बात करें। हमें मक्खी और मकड़े के इस संघर्ष को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए, इनकी अन्दरूनी बातों को समझना चाहिए, शत्रुओं ने जो जाले हमें दबोचने के लिए बनाये हैं, हमें उनकी चाल समझना चाहिए, उनकी साजिशों से सतर्क रहना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि हम सब एक हों। अलग-अलग हम काफी कमजोर हैं, उस जाले को तोड़ने के लिए जिसने हमें फंसा रखा है। हम अपनी बेड़ियों को तोड़ डालें, अपने शत्रुओं को गुप्त स्थानों से खींच लायें और प्रत्येक स्थान पर तर्कबुद्धि का प्रखर प्रकाश फैलायें, ज्ञान का विस्तार करें ताकि भविष्य में यह निकृष्ट जीव अंधकार में अपनी चालें न चल सके।

मक्खियों! यदि तुम चाहो तुममें इरादा हो तो तुम अजेय हो सकती हो। यह सच है कि मकड़े आज भी शक्तिशाली हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। मक्खियों! यद्यपि तुम दुर्बल और तुच्छ हो, फिर भी तुम संख्या में एक पूरी फौज के बराबर हो। तुम्हीं जीवन हो, तुम्हीं संसार हो- केवल यदि तुम चाहो, यदि तुम एकताबद्ध हो जाओ तो तुम सिर्फ एक झोंके से, अपने पंखों की फड़फड़ाहट से सारे भयानक तारों को तोड़ सकती हो, उन जालों को तहस नहस कर सकती हो जिनमें तुम कैद हो, जहां तुम हताश होकर लड़ती हो और भूख से मर जाती हो। यदि तुममें इरादा हो तो तुम दरिद्रता और दासता को गुजरे दिनों की बातें बना सकती हो।

इसलिए चाहना सीखो! इरादा करना सीखो!

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2001

साइबर दुनिया का बिल्लू बादशाह सान्ता क्लाज के चोगे में

अपने घिनौने चेहरे को छिपाने के लिए लुटेरे अक्सर ही सांता क्लाज का नकाब ओढ़ लेते हैं। जो जितना बड़ा लुटेरा, वह उतना बड़ा 'सांता क्लाज'। पिछले माह के मध्य में अमेरिकी साम्राज्यवाद का एक अहम नुमांइदा भारत आया था, जिसके आगे-पीछे हमारे देश के नेता नौकरशाह दुम हिलाते देखे गये। इस नुमाइंदे का नाम है- बिल गेट्स। बम्बइयां फिल्मों की भाषा में कहें तो यह शख्स दुनिया में 'साफ्टवेयर' का बिल्लू बादशाह है। तो यही बिल्लू बादशाह भारत आने पर अपनी आवभगत से बहुत खुश हुआ और उसने ऐलान किया कि वह भारत के एड्स रोगियों के इलाज के लिए 460 करोड़ रुपये देगा। वाह! क्या बात है। अच्छे-अच्छे सांता क्लाज इस दरियादिली पर ईर्ष्या करेंगे।

यह अनायास नहीं है कि 'विश्व समुदाय' (आजकल लुटेरे अपने गिरोहों को विश्व समुदाय कहने लगे हैं) भारत के एड्स रोगियों के प्रति अचानक चिन्तित हो उठा है। पिछले महीनों में अमेरिकी राजूदत के बयान और संयुक्त राष्ट्र की एड्स संबंधी रिपोर्ट में भारत में एड्स रोगियों की बढ़ती संख्या पर जो चिन्ता व्यक्त की गई है वह पाखण्डियों की जुगलबन्दी का अनूठा उदाहरण है।

साथ-साथ ही इस जुगलबन्दी पर ठुमका लगाने बिल गेट्स भारत में अवतरित होते हैं और 460 करोड़ रुपये की रकम एड्स रोग को भगाने के लिए देने की घोषणा करते हैं। हमारे देशके 'जनसेवक' इस पर आनन्दित होकर विशेष मुद्रा में ताली बजाते हैं। आम जन इस नौटंकी को देखकर एक बार फिर मतिभ्रमित हो जाता है कि माजरा क्या है?

इराक में जब लाखों बच्चे अमेरिकी दादागिरी के कारण दवाओं के अभाव में तड़प-तड़प कर मर जाते हैं, तब ये लुटेरे ठहाका लगाते हैं। फिलिस्तीन में जब बेगुनाह युवाओं, बच्चों, स्त्रियों का कत्ल किया जाता है तो अमेरिका इजराइल की पीठ थपथपाता दिखता है। भारत में जब लाखों मजदूर परिवार छंटनी-तालाबन्दी के कारण सड़क पर ढकेल दिये जाते हैं तो लुटेरे देश चिंचियाते हैं, दांत किटकिटाते हैं और छंटनी करो, और खून चूसो।

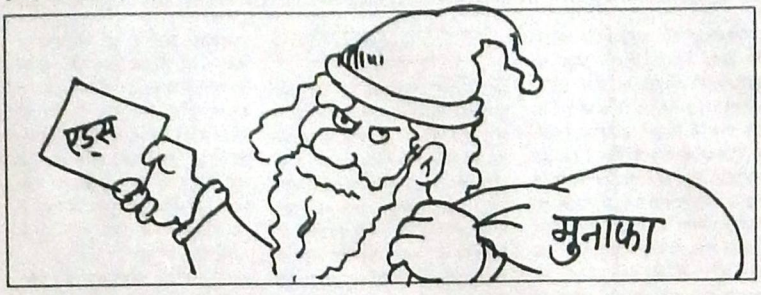

दुनिया के जिस भी कोने से मेहनतकश जनता अपने हकों के लिए उठ खड़ी होती है उधर ही ये अपनी तोपों का मुंह मोड़ देते हैं और गला फाड़ कर चिल्लाने लगते हैं- आतंकवाद का सफाया कर देंगे। दुनिया में सबसे ज्यादा आतंक फैलाने वाला, बिन लादेन जैसे आतंकवादियों को पैदा करने वाला अमेरिका जब आतंकवाद विरोधी अभियान चलाता है तो संदेह होना स्वाभाविक है। दुनियाभर के मजदूरों से खून की आखिरी बूंद निचोड़कर मुनाफा बटोरने वाले मुनाफाखोर जब सांता क्लाज अभियान चलाते हैं तो समझना चाहिए मामला गड़बड़ है।

बिल्लू बादशाह आये। उन्हें एड्स महामारी से हिन्दुस्तानियों को बचाना अपना नैतिक फर्ज लगा और उन्होंने 460 करोड़ रुपये की खैरात देने की घोषणा कर दी। एक सामान्य जन भी जानता है कि भारत में टी. बी., मलेरिया और कुष्ठ जैसे रोगों से मरने वालों की संख्या एड्स से मरने वालों से कहीं ज्यादा है। जबकि इन रोगों का इलाज खोजा जा चुका है, एड्स बीमारी के लिए तो अभी हवा में तीर छोड़े जा रहे हैं।

बिल्लू बादशाह मूर्ख नहीं हैं, जो यह न जानते हों। वह बेहद चालाक और धूर्त हैं वह इन तथ्यों को भली-भांति अनदेखा कर रहे हैं और एड्स को महामारी के रूप में प्रचारित कर रहे हैं। वह जानते हैं कि एड्स मुनाफा पैदा करेगा। एड्स हिन्दुस्तान भर में साम्राज्यवाद के टुकड़खोरों, एजेण्टों यानि एनजीओ का नेटवर्क खड़ा करेगा। एड्स भय पैदा करेगा, आतंक पैदा करेगा और दुनिया भर की गरीब जनता अज्ञात भय से भयभीत बिल्लू बादशाह की ओर आशा भरी निगाहों से ताकेगी। बिल्लू बादशाह खुश होकर कहेंगे- हमारी शरण में आओ, तुम्हारा इसी में कल्याण है।

एड्स का हौव्वा खड़ा कर लूट का कारोबार बढ़ाया जा सकता है, यह बात बिल गेट्स जैसे मुनाफाखोर शिरोमणि अच्छी तरह जानते हैं। एड्स की रोकथाम के नाम पर पेशेवर रक्तदाताओं पर नियंत्रण लगाने के कारण ही विदेशों से किये जाने वाले रक्त अवयव के आयात में भारी बढ़ोत्तरी हुई है। वर्ष 93 में 25 लाख रुपये के मुकाबले वर्ष 99 में 2000 करोड़ रुपये का आयात किया गया। इसके साथ ही कण्डोम बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मुनाफे में भारी वृद्धि हुई है। एड्स के इलाज के नाम पर परीक्षण और दवा में जो लूट है, वह अलग से है।

यह दिलचस्प है कि एड्स रोग के लक्षणों और इस रोग पर विश्व के जाने-माने वैज्ञानिकों ने सवाल खड़े किये है। एड्स के लक्षण के रूप में शरीर की जिस प्रतिरोधक क्षमता खत्म होने की बात कही जाती है, वह वैज्ञानिकों का कहना है कि करीब सत्तर प्रकार के रोगों में ऐसे लक्षण देखने को मिल सकते हैं। इसके साथ ही जहां अमीर देशों में कड़े मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले लोगों की तो वहीं दूसरी ओर गरीब देशों में गरीबी और कुपोषण की मार झेल रहे लोगों के शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। यही कारण है कि एड्स के रोग से मरने वालों की संख्या नहीं बताई जाती एड्स प्रभावित लोगों का आंकड़ा प्रचारित कर भयादोहन का काम अनवरत चलता रहता है। इसे भारत में अमेरिकी राजदूत भी करते हैं तो बिल गेट्स भी इसकी मुनादी पीट जाते हैं।

बहरहाल लुटेरों के टुकड़ों पर पल रहे मक्खी-मकड़ी की तरह देश भर में फैले एनजीओ के लिए तो बिल्लू बादशाह की भारत यात्रा वरदान साबित हुई। इनके कर्ता-धर्ता बादशाह को इम्प्रेस करने के फेर में 'ताता- थैया' करते रहे। इनको निराश भी नहीं होना पड़ा।

बादशाह ने इनके साथ फोटू खिंचवाई। डालर की वर्षा करते हुए यह हिदायत भी दी कि इसको ईमानदारी से खरचना। एनजीओ वालों ने कहा 'जी सर' और मगन हो ईमानदारी से खरचने की योजनाएं बनाने में जुट गये।

मज़दूर बस माल पैदा करने की मशीन हैं

(बिगुल प्रतिनिधि)

नोएडा। एडवांस एग्रो इन्टरनेशनल कारखाना औद्योगिक नगरी नोएडा के सेक्टर-58 के सी-ब्लाक में स्थित है इन मालिकों का एक कारखाना और है जो सेक्टर - दो ब्लाक सी 74 में है। इस कारखाने को चार मालिक साझेदारी के रूप में चलाते हैं। मालिकों का नाम सुरेन्द्र सिंह, डा. सत्यपाल, नरेन्द्र और विजय गुप्ता। इस कारखाने में उत्पादन का कारोबार 1997 से शुरू हुआ है। कारखाना लगभग तीन या चार एकड़ भूमि में बना है।

कारखाने बिल्डिंग में तीन तल हैं। भू-तल, को स्टाक रूम बनाया गया है। प्रथम तल पर मशीनें हैं, जिस पर मजदूर काम करते हैं। तृतीय तल पर आफिस बना हुआ है। इस तल को छोड़कर अन्य दोनों तलों के कमरों में झरोखे के रूप में शीशे लगे हुए हैं किन्तु काफी जगह खाली भी है जिससे हवा आती जाती है। गर्मी के मौसम में लू के आने जाने से मजदूर परेशान होते ही है। मजदूर जहां काम करते हैं, पंखे की कोई व्यवस्था नहीं है। ठंडी के मौसम में कुछ कहना ही नहीं है।

कारखानों में ट्रैक्टर का पार्टस बनता है। मालिक अपने माल को देश के अलावा विदेश भी भेजता है, जैसे अमेरिका ओर जर्मनी। वे मजदूर, जो मालिकों की पूंजी खड़ी करने के लिए मशीनों कीसहायता से लोहे के टुकड़े को माल की एक विशेष शक्ल देते हैं उनकी संख्या केवल सेक्टर 58 के सी ब्लाक में 60 हैं। जिसमें 40 कारीगर 18 हेल्पर और दो हेल्पर महिलाएं हैं। कारीगरों की 8 घंटे की तनख्वाह 2000 रुपये है तथा हेल्परों को 8 घटे के 1300 रुपये मिलते हैं। इसमें अधिकांश मजदूर तीन तीन, चार-चार साल से इसी फिक्स रेट पर काम करते हैं। इन कुल मजदूरों में से लगभग 20 लोगों का फण्ड कटता है। दिवाली का बोनस भी बिरले किसी मजदूर को मिलता है क्योंकि मालिक की शर्त है कि बोनस उसी को दिया जायेगा जो मजदूर साल में 330 दिन काम करें।

मालिक ने पाकेटमारी करते हुए मजदूरों पर एक और शर्त थोपा है यह कि यदि किसी मजदूर को महीने में चार छुट्टी से अधिक हुई तो वह उसकी ड्यूटी में से एक दिहाड़ी काट लेता है। सभी मजदूर रोजाना 12 घंटे ड्यूटी करते हैं। इसके बावजूद वह नाइट में भी रोजा 10-12 मजदूरों को रोक लेता है और इस प्रकार महीने में अधिकतर मजदूर लगातार 36-36 घंटे तक ड्यूटी करते हैं। नाइट ड्यूटी का पैसा दूना नहीं मिलता। मजदूरों को दिन में 12 घंटे के दौरान पहले एक चाय और एक मट्ठी मिलता था किन्तु अब उसे रोक दिया है और पेमेन्ट के साथ चाय का 90 रुपये दे देता है। एक मजदूर ने बताया कि मालिक ऐसा इसलिए करता है कि मजदूर चाय पीने में पांच सात मिनट गुजारता है, सुर्ती बनाने में पांच मिनट और उसके बाद पेशाब करने जाता है, इस प्रकार 15 मिनट एक बार चाय आने पर समय गंवाता है, जिससे उसका नुकसान 3 रुपया तो होता ही है साथ ही साथ समय भी नुकसान होता है इस प्रकार मालिक बड़ी चालाकी से चाय के जगह पैसा पेमेन्ट करता है।

इस कारखाने में मजदूर यूनियन न पहले रही है और न आज है। कारखाने में अधिकतर मजदूर बिहार के रहने वाले है। इन मजदूरों की चेतना इस स्तर की है कि मालिक ने पेमेन्ट का कोई समय नहीं फिक्स किया है। जब उसको सुविधा आती है तो पैसा बांटता है मजदूर किराये के मकान में रहते है। समय से पैसा न देने के कारण निकाल दिये जाते हैं। फिर भी मालिक से यह नहीं कहते हैं कि मुझे पैसा दो और पेमेन्ट का डेट फिक्स करो। कारखाने शौचालय नहीं है। मजदूर शौच के लिए पानी लेकर बाहर जाते हैं। इस प्रकार सप्ताह के अवकाश का दिन भी मजदूरों को नहीं मिलता है। दरअसल मालिक साबित करना चाहता है कि तुम (मजदूर) माल पैदा करने वाला जीवित मशीन हो, इसके सिवा कुछ नहीं!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, बर्रादपुर, मऊ।